'श्री सत्य भगवान की जय'

बन्धन तोड़ो

प्रवचनकार —

निर्भीक वक्ता-ज्ञान तपस्वी गुरुदेव-पण्डित

श्री कस्तूरचन्द्र जी महाराज के सुशिष्य

कविरत्न श्री अमृतचन्द्र जी महाराज

संयोजक —

सिद्धातरत्न श्री गौतम मुनि जी महाराज

प्रकाशक —

गौतम ज्ञान पीठ, पटियाला ।

यह पुस्तक

प्रस्तुत पुस्तक कविरत्न प्रसिद्ध वक्ता श्री अमृत मुनि जी महाराज के सम्वत् २०११ के पटियाला चातुर्मास के १२ प्रवचनों का संग्रह है। मुनि श्री के प्रवचनों को मनस्वी श्री गौतम मुनि जी सदा ही लिपिबद्ध करते रहते हैं। उन की लेखनी से मुनि श्री का शायद ही कोई प्रवचन अछूता रहा होगा। विशेषता यह है कि प्रवचनों की आत्मा को अक्षुण्ण रखते हुए विशेष स्थलों को गौतम मुनि जी ने ज्यों का त्यों आंकने का सफल प्रयत्न किया है। सच पूछा जाए तो यह प्रवचन वर्तमान रूप में आप के हाथों में पहुँचाने का श्रेय उन्हीं के सत्परिश्रम को ही है।

प्राचीन ऋषियों के प्रवचन ही समय पाकर शास्त्रों का रूप ले लेते हैं फिर चाहे वे किसी भी भाषा में लिपिबद्ध किए गए हों। यह बात दूसरी है कि धार्मिक कट्टरता उन्हें कभी ईश्वर-दत्त कह कर अनुयायियों के लिए ग्राह्य और बिना मीन मेख निकाले आचरण में लाने योग्य बना देने का प्रयत्न करती है। दीर्घकाल व्यतीत होने पर समाज उन में विद्यमान ज्ञान को पूजने लगता है। अतएव इन प्रवचनों को भले ही प्राचीन मुनियों के प्रवचनों की भांति पूजा न जाए, पूजने के लिए यह है भी नहीं,

तथापि इन के अन्तर से झांक रहा ज्ञान मात्र भी है और
में उतार सकने योग्य भी। आध्यात्मिक जगत के विज्ञान
अनुभवी चिकित्सक द्वारा दिए गए आदेश मुक्त हैं यह जो
पीड़ित मानव आत्मा का रोग मुक्त करने के लिए आवश्यक

प्रवचनों में अनेक गम्भीर तथा विवादास्पद प्रश्नों पर
हृदय से विचार किया गया है। जिन दिनों के यह प्रवचन
मुनि श्री एक संघर्ष से गुजर रहे थे सम्प्रदाय की संकुचित
उन दिनों मुनि श्री के आगे तांडव नृत्य कर रही थी पर
सब से अप्रभावित यह प्रवचन शांत एवं सरल हृदय की
है। इन में गम्भीरता है, सरलता है और है आत्म ।
का नव सन्देश।

साम्प्रदायिकता जातीय भेद भाव और पक्षपात से
दूर रह कर किए गए इन व्याख्यानों में अनेक ऐसी
का समाधान है जो आज के युग में मानव के सम्मुख हर
मुंह बाए खड़ी रहती हैं। गूढ़ विषय ले कर इतनी रोचक
म [illegible] न पर सारगर्भित विचार व्यक्त करना प्रत्येक के बस
बात नहीं है। अन्धविश्वासों और नाना रूढ़ियों पर जिस ५
से अनेक बार चोट की गई है उस पर कर कोई भी कह
कि मुनि श्री की दृष्टि बड़ी पैनी है और वे अकस्मात ही
दुखती रगों का छेड़ देते हैं जिन में दुखन कम और
अधिक है साथ ही वे उन की पीड़ा हरने का सरल निष्ठा
उपाय भी करते हैं।

जीवन यात्रा में अनेक ऐसे अवसर आयेंगे, जबकि
पुस्तक एक मशाल का काम देगी पथप्रदर्शन करेगी। कुछ धर्म
न तत्वज्ञान और आध्यात्मिक दृष्टिकोण से जीवन-रहस्य को
जटिल और रहस्यपूर्ण बना डाला है कि लोग उसे
समझ कर उस की ओर से विमुख हो जाते हैं। इस

इस दुरूहता को सरलता में परिणत कर दिया गया है। पर जटिलता को सरलता में बदलने का यह कार्य चार मास तक चलता रहा था। मुनि श्री के इन चार मास के व्याख्यानों की लड़ी के १२ रत्न ही इस संग्रह में दिए गए हैं, पर प्रत्येक प्रवचन अपने में पूर्ण है अतः जन साधारण के लिए बहुत ही उपयोगी है।

सुख क्या है? परमानन्द कहां है? पूज्य, पुजारी और पूजा किसे कहते हैं? यह गुत्थियां इन प्रवचनों से खुल जायेंगी। मनुष्य अपने भाग्य का स्वयं निर्माता है यह सत्य शाश्वत है, भगवान हमें सुख नहीं दे सकता अपने पौरुष पर विश्वास करो, अपने सुख की भीख मांगने किसी के द्वार पर जाने की आवश्यकता नहीं, फिर चाहे वह भगवान का द्वार ही क्यों न हो, यह है इन प्रवचनों की प्रेरणा। सत्यं शिवं सुन्दरं की अक्षय मधुरिमा टपकती है उन में।

पुस्तक की प्रत्येक पंक्ति हमें कर्तव्यारूढ होने की शिक्षा देती है, भ्रम तथा भुलावों के जाल को तार २ करने का प्रयत्न करती है और पलायनवाद का भी तीव्र विरोध करती है। इस प्रकार आत्मा की अमर स्वतन्त्रता की गूंज है इस के शब्दों में। नाना प्रकार के धार्मिक, सामाजिक और बौद्धिक बन्धनों को तोड़ कर मुक्त वातावरण में आकर सोचने की प्रेरणा मिलती है इस पुस्तक से। इसी लिए इस को 'बन्धन तोड़ो" की संज्ञा दी गई है। अपनी ओर से अधिक न कह कर पुस्तक की उपादेयता का अन्तिम निर्णय आप पर छोड़ते हैं।

आईये! आप भी दुःखदायी बन्धनों से छुटकारा पाने के लिए पुस्तक में वर्णित उपायों का सफल प्रयोग कीजिए।

पटियाला चातुर्मास
५—८—५७

बाबू सिंह चौहान

श्री अमृत मुनि जी

कनक वर्ण उन्नत चौड़ा और आत्म तेज से दीप्तिमान ललाट, आवरण की पलकों के रंग की ऐनक के पीछे चमकती हुई आँखें, सफेद मुखवस्त्रिका से ढका हुआ लम्बा मुख मण्डल, श्वेत केश परन्तु बहुत ही कम, कन्धे पर रजोहरण, एक स्वच्छ सफेद वस्त्र के पीछे छिपी चौड़ी छाती और गांधी जी के समान लिपटा खादी का एक अंगोछा तथा नंगे पैर ये हैं पूरे वेशस्वरूप अमृत मुनि जी। हर समय किसी न किसी काम में जुटे हुए पुस्तकें पत्र पत्रिकाओं के इतने प्यासे कि अवसर भी हाथ लग जावें तो भी अतृप्त शिक्षा के धनी प्रत्येक क्षण शिक्षक बन रहने के लिए लालायित, समाज की कमजोरियों पर बार बार चोट करने के लिए प्रस्तुत दुखती रगों को खोज निकालने में निपुण और हिन्दी उर्दू तथा संस्कृत के विद्वान अमृत मुनि जी महाराज वास्तव में क्रांतिकारी सन्त हैं। आत्म विश्वास उन के जीवन का विशेष अंग है अक्षरों का तो पता नहीं पर उनकी वाणी का पता है व्यंग्यात्मक एवं ओज पूर्ण होने के साथ साथ मधुर और प्रभावशाली है। प्रायः देखा यह गया है कि उन से

वाद-विवाद के लिए लोग उन के पास गए और उन के पास से लौटे श्रद्धा लेकर। कितने ही लोगों को उनकी श्रद्धा का रसपान कर के ससार मे वे सुध रह कर उन्ही के चरणो मे जीवन रस ढूढते देखा गया है। कितने ही विद्यार्थी उन की कृपा से शिक्षा अध्ययन कर के बड़ी २ डिग्रिया प्राप्त कर चुके है। कौन सा ऐसा दिन हो सकता है जिस दिन उन्हो ने किसी को पढाया न हो, बहुत से निर्धन छात्र एव छात्रायें इन ही की कृपा से परीक्षा वैतरणी पार कर जाती है।

जैन मुनि हैं, पर अन्य धर्मावलम्बियों मे जितने उन के भक्त मिलेगे कदाचित उन की सख्या आश्चर्यजनक है। समस्त मत मतान्तरों का आदर करना, पर भूल, भ्रम रूढिवाद और अन्धविश्वास का डट कर विरोध करना उन की आदत है। स्वाभिमान की रक्षा करना और निहायत ही साधारण, आडम्बर हीन जीवन व्यतीत करना उन की विशेपताए है। महत्वाकाक्षा से बहुत दूर रहते हुए वे योग साधना मे भी लगे देखे जाते है। सुख की नींद सोना अथवा आराम से बैठे रहना उन्हे पसन्द नहीं। हर समय एक ही धुन 'किसी प्रकार समाज के काम आऊ।"

तेजस्वी अमृत मुनि जी कर्तव्य क्षेत्र मे लाने का श्रेय है परम पूज्य श्री कस्तूर चन्द्र जी महाराज को। बचपन मे ही अमृत मुनि जी गुरु देव के चरणों मे पहुच गये थे। ब्राह्मण परिवार मे जन्म ले कर बचपन से ही सस्कृत की शिक्षा प्राप्त करने वाले इस बालक ने गुरु चरणो मे पहुँच कर भी विद्या-ध्ययन जारी रखा और उन्हों ने अपने दैवी गुणों के कारण संस्कृत, हिन्दी, उर्दू आदि अनेक भाषाओं में विद्वत्ता प्राप्त की। जब वे इस योग्य हो गये कि मुनि व्रत के जीवन मे जा कर वे समाज को भी कुछ दे सकें, बडा सजधज के साथ उनकी दीक्षा

हुई। यह लगभग १० वर्ष की बात है। जिस समय उन का यह परिचय लिखा जा रहा है उन की आयु केवल ३७ वर्ष है पर उन के बालों की कालिमा लुप्त हो गई है यह उन के अनुभवों के बढ़ते आँचल की तो निशानी है ही उनकी आत्मा की पवित्रता का प्रतीक भी है और साथ ही उन के प्रकाश से घबरा कर तिमिर के पक्षपातियों द्वारा किये गये प्रहार का भी यह प्रमाण है। उन को एक बार विरोधियों ने विष दे कर हत्या करने का षड़यन्त्र किया पर विषपान करने के उपरान्त भी वे सेवान से न हटे, और उन्हों ने विष देने वाले को स्वमेव ही क्षमा कर दिया।

मुनि समाज में छोटे मुनियों के साथ हुए सत्ताधीश मुनियों के अन्यायों के प्रतिकार के लिए वे आगे आये उन की आवाज गूंजी और वे समस्त विघ्न बाधाओं को निर्भीकता पूर्वक पार करते हुए अपने क्रांतिकारी एवं सुधारवादी रास्ते पर बढ़ते रहे। अन्त में समाज को उन का मूल्य आँकना ही पड़ा और उन्हों ने अपना उचित स्थान प्राप्त किया।

भगवान् महावीर का दिव्य संदेश उन की रग २ में व्याप्त है। गुरु देव के आदर्श शिष्य के नाते वे प्रत्येक क्षण गुरु देव के संकेत पर आत्माहुति तक देने को तैयार रहते हैं। एक समय से वे अस्वस्थ हैं, उन की देह पर किया गया प्रहार उन के स्वास्थ्य को आज भी पीड़ित करता रहता है और कभी २ रोग का प्रहार इस प्रकार से होता है कि मानों मुनिवर मृत्यु के मुँह में ही चले जाते हैं पर अभी तक तो मृत्यु से वे परास्त हुए नहीं। डाक्टरों का मत है कि वे एक स्थान पर बैठ विश्राम करें, पर अभी तक वे देशाटन में हारे नहीं। वे भ्रमण करते ही रहते हैं, हां जहां रोग विवश कर देता है वहां मन मार कर बैठ जाते हैं।

कई बार उन से अन्य मतावलम्बियों का शास्त्रार्थ हुआ है, पर अपने विचारों की श्रेष्ठता सिद्ध करने मे वे सदा सफल हुये उन की विद्वत्ता और तर्क-बुद्धि का लोहा सभी मानते हैं। वे कवि भी हैं और हिन्दी, उर्दू और पंजाबी मे उन की कविताए काव्य-क्षेत्र में अपना स्थान रखती हैं। संस्कृत की श्रीमद्गौतम गीता उन की अमर कृति है। भारत के हजारों घरों मे जिस का नित्य नियम से विधिपूर्वक दैनिक पाठ किया जाता है। अस्वस्थता के कारण अब उन्हों ने कविता साधना मे छुट्टी ले रक्खी है, पर लेखनी अभी भी चल रही है। वे सफल लेखक, कवि, वक्ता और तार्किक भी हैं। उन की शिष्यमण्डली विशाल है और उसमें विभिन्न विचारों के लोग हैं। वे स्वय एक संस्था हैं, जिस की शाखायें विभिन्न क्षेत्रों में फैली हुई हैं।

उन के जीवन से सम्बन्धित अन्य जानकारी के लिये प्रकृति पुत्र" पढें।

२—५—५८
पटियाला

गौतम मुनि

इस पुस्तक में

बन्धन तोड़ो!

एक पण्डित जी को तोता पालने का शौक़ था, उनकी खाट के पास ही, उनके सामने एक पिंजड़ा टङ्गा रहता और उस मे होता एक तोता। पण्डित जी इसका बड़ा ख्याल रखते, कई २ बार पिंजड़े में रक्खी कटोरी मे पानी भरते, कई बार उसे चारा देते। एक तकुआ उन्होंने अपने पास रख रक्खा था। तोता बार बार फड़फड़ाता था और कुछ बोलता रहता, मानो चीत्कार कर रहा हो।

मैंने पण्डित जी से पूछा—"यह तोता आपने क्यों क़ैद कर रक्खा है?" वे बोले—"महाराज! मुझे तोते का शौक़ है। मुझे बहुत अच्छा लगता है यह। इस से पहले जो तोता था मेरे पास, आप उसे देखते कितना सुन्दर था वह? बस कुछ न पूछिए। तड़ाक तड़ाक 'राम राम' बोलता था। सुन्दर बोली बड़ी साफ़ और कुछ मधुर थी उसकी। पर क्या बताऊं एक दिन उसे बिल्ली ने मार डाला।"

पण्डित जी कहते २ दुखित हो गए।

मैंने पूछा—"यह तकुआ आप ने क्यों रख रक्खा है?"

वे कहने लगे—"महाराज ! यह तोता नया नया है, चार मास ही तो हुए हैं इसे खरीदे। इसे 'राम राम' सिखाता हूं। बिना जुल्म के तोता पढ़ाया थोड़े ही जाता है।'

मैंने देखा कि तोता बार बार पिंजड़े की लोहे की तीलियों को चोंच में भरता और उन्हें काटने का असफल प्रयत्न करता। मैंने कहा—"पण्डित जी ! यदि मनुष्य को इसी प्रकार किसी पिंजड़े में बन्द कर दिया जावे तो कैसा रहे ?"

वे सुनकर सकपका गए कुछ बोल न पाये। फिर मैंने कहा—"देखिए यह बेचारा स्वतन्त्र होने के लिये छटपटा रहा है। जुल्म के भय से भले ही यह 'राम राम' कहता है पर इसे आप के 'राम राम' से कोई प्रेम नहीं है इसे आपके खाने दाने पानी से भी मोह नहीं है, यह भागने की चेष्टा करता है, आप इसे भागने नहीं देते और इस की सेवक समान सेवा करते हैं। आप बिना तोते के नहीं रह सकते तो आप भी इसके दास हुए न ? स्वयं दास बने इसको परतन्त्र बनाए और फिर इसे कष्ट पहुँचा २ कर अपनी इच्छानुसार बोली बुलवाएं यह तो आप के शास्त्रों में कहीं नहीं लिखा। आप ब्राह्मण हो कर ऐसा अन्यायपूर्ण कार्य करते हैं ?"

पण्डित जी मेरी बात सुनकर बहुत लज्जित हुये। पर तोते को मुक्त करने की उनकी इच्छा नहीं हुई। मैं यह कह कर चला आया—"न सही तोते की मुक्ति आप को स्वीकार पर आप स्वयं तो मुक्त हों तोते की गुलामी के बन्धन तोड़ डालिए पण्डित जी ! एक चिन्ता से छुट्टी मिल जायेगी। कम से कम तोते की फड़फड़ाहट से ही छुट रिहा कीजिये।"

बस तोते की दशा देख कर मुझे संत तुलसी दास जी की बात याद आ गई—

पराधीन सपने सुख नाहिं

हम लोग तो मनुष्य है, पशु और पक्षी तक भी किसी प्रकार के वन्धन को पसन्द नहीं करते। तनिक सा तोता इतने वडे पिजडे की सलाखो मे अन्तिम स्वास तक जूझता रहता है। उसे परतन्त्रता का स्वादिष्ट भोजन भी प्रिय नहीं होता। पशु पक्षियों की भावना यह है कि—

मिले खुश्क रोटी जो आजाद रह कर।
वह है खौफ-ओ-जिल्लत के हलवे से बेहतर॥

परन्तु दु ख होता है यह देखकर कि मनुष्य स्वयं दूसरों को दास बनाता है, और स्वय उनका और दूसरो का दास बनता है, वह पशु पक्षियो की स्वतन्त्रता अथवा वन्धन-मुक्ति के लिए छटपटाहट से कोई शिक्षा ग्रहण नहीं करता।

जब मैं यह सुनता हूँ कि उक्त देश के नागरिक अपनी स्वतन्त्रता के लिये सङ्घर्ष करते है तो मुझे सन्तोष होता है। सन्तोष इस लिए कि वह आत्मिक स्वभाव के अनुकूल कार्य कर रहे हैं। मनुष्य का आत्मा किसी का दास रहना पसन्द नहीं करता। अतएव युगों २ से मनुष्य अपनी स्वतन्त्रता के लिए सङ्घर्ष करता चला आया है, और वह करता रहेगा, क्योंकि वन्धन भला कौन पसन्द करता है?

हां, वन्धन कोई पसन्द नहीं करता फिर भी लोग वन्धनों से जकड़े हुए हैं। आज हम आजाद हैं, वर्षों तक हमने अपने वन्धनों के विरुद्ध संग्राम किया। १५ अगस्त १६४७ हमारे लिए स्वतन्त्रता का सन्देश लेकर आया तो सारा देश उमड पडा स्वतन्त्रता के स्वागत के लिए।

अंग्रेजी साम्राज्य से मुक्ति का हमने हार्दिक अभिनन्दन किया और स्वतन्त्रता के प्रति अपने हार्दिक उद्गारों को प्रगट करने के लिए सारे देश ने उत्सव मनाया। कई वर्ष हो गए उस घटना को और दिन बीतते ही जाते हैं, किन्तु मैं कहता हूँ

वे कहने लगे—"महाराज! यह तोता नया नया है चार मास ही तो हुए हैं इसे खरीदे। इसे 'राम राम' सिखाता हूं। बिना दण्ड के तोता पढ़ाया थोड़े ही जाता है।"

मैंने देखा कि तोता बार बार पिंजड़े की लोहे की तीलियों को चोंच में भरता और उन्हें काटने का असफल प्रयत्न करता। मैंने कहा—"पण्डित जी! यदि मनुष्य को इसी प्रकार किसी पिंजड़े में बन्द कर दिया जाये तो कैसा रहे?"

ये सुनकर सकपका गए कुछ बोल न पाये। फिर मैंने कहा—"देखिए यह बेचारा स्वतन्त्र होने के लिये तड़पता रहा है। दण्ड के भय से भले ही यह 'राम राम' कहे पर इसे आप के 'राम राम' से कोई प्रेम नहीं है इसे आपके खाने वाले पानी से भी मोह नहीं है, यह भागने की चेष्टा करता है, आप इसे भागने नहीं देते और इस की सेवक समान सेवा करते हैं। आप बिना तोते के नहीं रह सकते तो आप भी इसके दास हुए न? स्वयं दास बने इसको परतन्त्र बनाए और फिर इसे कष्ट पहुँचा २ कर अपनी इच्छानुसार वाणी बुलवाएं यह तो आप के शास्त्रों में कहीं नहीं लिखा। आप ब्राह्मण हो कर ऐसा अन्यायपूर्ण कार्य करते हैं?"

पण्डित जी मेरी बात सुनकर बहुत लज्जित हुए। पर तोते को मुक्त करने की उनकी इच्छा नहीं हुई। मैं यह कह कर चला आया—"न सही तोते की मुक्ति आप को स्वीकार पर आप स्वयं तो मुक्त हों तोते की गुलामी के बन्धन तोड़ डालिए पण्डित जी! एक चिन्ता से छुट्टी मिल जायेगी। कम से कम तोते की फड़फड़ाहट से ही कुछ शिक्षा लीजिये।"

उस तोते की दशा देख कर मुझे संत तुलसी दास जी की बात याद आ गई—

पराधीन सपने सुख नाहिं

हम लोग तो मनुष्य हैं, पशु और पक्षी तक भी किसी प्रकार के वन्धन को पसन्द नहीं करते। तनिक सा तोता इतने बड़े पिंजड़े की सलाखों से अन्तिम स्वास तक जूझता रहता है। उसे परतन्त्रता का स्वादिष्ट भोजन भी प्रिय नहीं होता। पशु पक्षियों की भावना यह है कि—

मिले खुश्क रोटी जो आजाद रह कर।
वह है खौफ़-ओ-ज़िल्लत के हलवे से बेहतर॥

परन्तु दुःख होता है यह देखकर कि मनुष्य स्वयं दूसरों को दास बनाता है, और स्वयं उनका और दूसरों का दास बनता है, वह पशु पक्षियों की स्वतन्त्रता अथवा बन्धन-मुक्ति के लिए छटपटाहट से कोई शिक्षा ग्रहण नहीं करता।

जब मैं यह सुनता हूँ कि उक्त देश के नागरिक अपनी स्वतन्त्रता के लिये संघर्ष करते हैं तो मुझे सन्तोष होता है। सन्तोष इस लिए कि वह आत्मिक स्वभाव के अनुकूल कार्य कर रहे हैं। मनुष्य का आत्मा किसी का दास रहना पसन्द नहीं करता। अतएव युगों २ से मनुष्य अपनी स्वतन्त्रता के लिए संघर्ष करता चला आया है, और वह करता रहेगा, क्योंकि बन्धन भला कौन पसन्द करता है?

हां, बन्धन कोई पसन्द नहीं करता फिर भी लोग बन्धनों से जकड़े हुए हैं। आज हम आजाद हैं, वर्षों तक हमने अपने बन्धनों के विरुद्ध संग्राम किया। १५ अगस्त १९४७ हमारे लिए स्वतन्त्रता का सन्देश लेकर आया तो सारा देश उमड़ पड़ा स्वतन्त्रता के स्वागत के लिए।

अंग्रेजी साम्राज्य से मुक्ति का हमने हार्दिक अभिनन्दन किया और स्वतन्त्रता के प्रति अपने हार्दिक उद्गारों को प्रगट करने के लिए सारे देश ने उत्सव मनाया। कई वर्ष हो गए उस घटना को और दिन बीतते ही जाते हैं, किन्तु मैं कहता हूँ

हम आज भी गुलाम हैं। आज भी कितने ही बन्धनों से जकड़ा हुआ है हमारा देश। आप सब लोग आँखों से न दीख पड़ने वाली जंजीरों से बन्धे हुए हो। गुलामी की बेड़ियां आपके पैरों में दिखाई नहीं देती थी, फिर भी गुलामी थी, दासता थी। इसी प्रकार आज देश में आपकी अपनी सरकार है, फिर भी आप मुक्त नहीं, आप स्वतन्त्र नहीं, आप पराधीन हैं और पराधीन हैं अतएव आपको कोई सुख नहीं। कबूतर के पैरों में जंजीर तो नहीं डाली जाती किसी पिंजरे में भी उसे बन्द नहीं किया जाता फिर भी वह दास बन जाता है, दास बना रहता है कबूतर की भांति आपको अपनी दासता से मोह है। आप सोचिए तो सही! मानवता का कितना बड़ा अपमान है यह?

बन्धन कई प्रकार के होते हैं। दासता की कई किस्में हैं—

—राजनैतिक बन्धन

—आर्थिक बन्धन

—सामाजिक बन्धन

—बौद्धिक बन्धन

—मानसिक बन्धन

—शारीरिक बन्धन और आत्मिक बन्धन

राजनैतिक बन्धन आप तोड़ चुके हैं। अब आपके देश में आपका अपना शासन है, आप ही हैं इस देश के स्वामी। पर स्वाधीनता का यह तो अर्थ नहीं कि आप केवल अपने द्वारा अपनी सरकार बनाने का अधिकार रखते हो। स्वाधीनता और स्वतन्त्रता का अर्थ राजनैतिक स्वतन्त्रता ही नहीं है। स्वाधीन का अर्थ है, स्व+आधीन जो अपने आधीन हो। किसी 'पर' के आधीन न हो वह स्वाधीन है। स्वतन्त्रता का अर्थ है 'स्व+तन्त्र' अपना तन्त्र, अपनी मरजी जो चला सके पराई

मरजी के अनुसार जो न चले वह स्वतन्त्र है। इन अर्थों को समझिए और अब अपने जीवन पर दृष्टि डालिए। क्या आप स्वाधीन अथवा स्वतन्त्र की उपरोक्त परिभाषा के अनुसार स्वाधीन न कहे जा सकेंगे? मैं कहता हू नहीं है आप स्वतन्त्र अथवा स्वाधीन। आप वन्धन मुक्त नहीं हुए। अभी और भी जञ्जीरें हैं जिन्हें आपको तोडना होगा।

कई वार कह चुका हू कि आप आत्मा हैं देह नहीं। फिर आप की स्वतन्त्रता का अर्थ है आत्मा की स्वतन्त्रता, आत्मा अभी आपकी स्वतन्त्र है नहीं, अभी वन्धन मुक्त है वह। आपकी देह पर आपकी आत्मा का अधिकार है, पर क्या इस देह पर आपकी आत्मा का ही आदेश चलता है? आप जो कुछ करते हैं वह दूसरे के आदेश पर। पेट रोटी मागता है, आप खाना खाते हैं, गला खुश्क हो तो वह पानी मागता है, आप पानी पी लेते हैं। जीभ स्वादिष्ट भोजन मागती है, आप स्वादिष्ट भोजन खा लेते हैं। किसी वस्तु को जीभ पसन्द न करे तो आप उसे खाने से छोड देते हैं। शरीर को गरमी लगी तो आपके शरीर ने हवा मागी, आप पङ्खा करने लगे, शरीर को सरदी लगी आप आग तापने लगे अथवा गरम वस्त्र डाट लिए आपने। आँखों ने एक वस्तु देखी, आखों को वह सुन्दर लगी, आप उसी की ओर देखने लगे। इस प्रकार देह की जिस इन्द्रिय ने जो चाहा वही आपने किया। क्या अर्थ हुआ इसका? आप देह और उसकी इन्द्रियों के दास हैं।

आप जानते हैं कि मनुष्य मनुष्य सव समान हैं, अस्पृश्यता मानवीयता के खिलाफ है, आप छूत छात विरोधी हैं, पर किसी हरिजन के पास जाकर आप नहीं वैठ सकते। उसका वनाया भोजन नहीं खाते। क्यों? केवल लोक लज्जा के मारे ही तो। मेरे पास ऐसे कितने ही लोग आते हैं जो सैद्धातिक रूप से

आवश्यकता विरोधी है, पर करते हैं हरिजनों से वही व्यवहार जो पोंगा पंथी लोग करते हैं, मैं उन से पूछता हूं कि आप मानते कुछ हैं करते कुछ? बात क्या है? वे उत्तर देते हैं "क्या करें महाराज! समाज क्या कहेगा इसी का भय है।" यह क्या है? सामाजिक बन्धनों का एक उदाहरण है यह।

एक बार एक वैष्णव ने कहा—"यदि सामने से जैनमुनि आता हो तो इस से पहले कि तुम्हारा उस से साक्षात्कार हो तुम पहली गली में मुड़ जाओ।" क्या अर्थ हुआ इस का? यही न कि तुम जैन मुनि की बात कदापि न सुनो। सुनोगे तो अपने धर्म से डिग जाओगे अर्थात बुद्धि के किवाड़ बन्द रक्खो। कहीं कोई ऐसी बात तुम्हारी बुद्धि तक न पहुंच जाये जो तुम्हारी मान्यताओं में परिवर्तन ला दे। यह है बौद्धिक दासता।

कुछ लोग हैं जो रात दिन दूसरे विचारों के लोगों की बुराई करने में ही लगे रहते हैं। उन्हें अपनी कुरीतियां भी पसन्द हैं, क्योंकि वह अपनी हैं, दूसरे विचारों के लोग तो बुरे हैं ही। क्यों हैं? कारण यह कि वे हमारे विचार को स्वीकार नहीं करते। उन में से कोई भी अच्छा नहीं निकल सकता क्योंकि वे तो बुरे लोग हैं, अत: उनसे विचार विमर्श करना अथवा उन में भी कोई अच्छाई हो सकती है यह सोचना अनुचित है। इसे क्या कहा जायेगा? मानसिक दासता ही तो है यह। एक युग से जो चीज चली आ रही है बस उस से ही चिपटे रहें केवल इस लिए कि पूर्वज भी तो ऐसा ही करते थे। यह दासता नहीं तो और क्या है!

कुछ लोग हैं जो एक काम को अच्छा नहीं समझते पर फिर भी करते रही हैं, कारण क्या बताते हैं इस का? कहते हैं— "क्या करें साहब यह पापी पेट चैन नहीं लेने देता इसे भरना

है तो यह बुरा काम करना ही पड़ेगा।"

एक और बात देखिये कुछ लोग एक व्यक्ति के घर जा कर काम करते हैं, सारे दिन के लिए अपना परिश्रम उसे बेच देते हैं, फिर चाहे वह कुछ क्यों न कराये। सम्भव है वह आदमी बहुत ही नीच मनोवृत्ति का हो, सम्भव है वह कोई ऐसा काम कराये जिस में मजदूर की रुचि न हो। तब भी मजदूर उसका काम करता है। यह बात हमारे देश मे बहुत पाई जाती है। लोग अपनी आवश्यकता की पूर्ति के लिए ऋण ले लेते है और उसे चुकाने के लिए स्वयं उसके नौकर हो जाते है अथवा अपने लड़के को नौकर कर देते हैं। यह नौकरी उस समय तक चलती है जब तक कि ऋण न उतर जाये। इसे आप क्या कहेंगे ? शारीरिक दासता ही तो होती है वह।

और इन्द्रियों की दासता, शारीरिक दासता, आर्थिक दासता बौद्धिक अथवा मानसिक दासता, यह सब दासताए मिलकर आत्मिक बन्धनों की रचना कर देती हैं। राग और द्वेष के बन्धनों को जन्म देती हैं। यह सारी दासताएं इस प्रकार चारों ओर बन्धन ही बन्धन होते हैं। मोह के बन्धन से मुक्ति नहीं, ममत्व के बन्धनों से छुटकारा नहीं और बौद्धिक एव मानसिक बन्धनों को तोड़ा नहीं गया तो फिर आप ही सोचिए किस काम की है यह स्वतन्त्रता जिस में आप क़दम २ पर अपने ही बनाए बन्धनों मे जकड़े रहते हैं और सारे जीवन भर उन बन्धनों में रह कर दुःख उठाते हैं ? आत्मा के स्वभाव के प्रतिकूल यदि एक भी काम करने को आप मजबूर होते हैं तो आप स्वाधीन नहीं हैं, कोई बात नहीं कि आप किसी व्यक्ति के इशारे पर वह करते हैं अथवा अपनी कमजोरी के इशारे पर। दासता, दासता ही है, बन्धन बन्धन ही है, फिर चाहे वह किसी के क्यों न हों।

सारा देश आज बन्धनों में जकड़ा है। अंग्रेज चले गए पर अभी तक अंग्रेज़ियत हमारे ऊपर शासन करती है। कहीं चले जाइये, कितने ही लोग अंग्रेजी कपड़ों में सज मिलेंगे। कुछ लोग तो पश्चिमी पहनाव में इतने हास्यास्पद रूप में आ जाते हैं कि देखने वाले मुस्कराने लगते हैं उन्हें देख कर पर वे अंग्रेज़ियत के नशे में रोब जमाते हुए निकलते हैं।

हिन्दी को राष्ट्र भाषा मान लिया गया है पर हिन्दी भाषा भाषी क्षेत्र का व्यक्ति भी जब अपने किसी रिश्तेदार अथवा मित्र को पत्र लिखता है तो अंग्रेजी में। बहुत से लोग तो कुछ अंग्रेजी नहीं लिख पाते पर उन्हें अपनी मातृभाषा में लिखते लज्जा आती है। बातें करते समय चाहे उच्चारण तथा व्याकरण सम्बन्धी अनेक भूलें करें पर बोलेंगे अंग्रेजी में ही। क्योंकि वे इस में अपनी शान समझते हैं। अंग्रेजी का शासकों की भाषा समझ कर जो उसका सम्मान अंग्रेजों के युग में था वही आज |है अभी तक है। देश की यह मानसिक दासता अपनी सभ्यता और संस्कृति का विकास नहीं करने देगी। इस मानसिक दासता को त्यागना होगा, इस भावना के पीछे अपने को निम्न समझने की प्रवृत्ति है। जो आत्म विश्वास और स्वाभिमान पर कुठाराघात करती है। हीनता के यह विनाशक भाव हमें उन्नति की ओर बढ़ने से सदा ही रोकते रहेंगे। यदि हम चाहते हैं कि हम भी उन्नतिशील राष्ट्रों की बराबरी में पहुंचे तो मानसिक दासता के यह बन्धन तोड़ फेंकने होंगे।

रूढ़िवाद राष्ट्र के जीवन के साथ बुरी तरह चिपटा है। बुद्धि से काम न ले कर केवल प्राचीनता के प्रति अन्धभक्ति होने के कारण समाज उस लकीर को पीट रहा है जो न जाने कैसे सामाजिक जीवन पर खिंच गई है। और रूढ़िवादिता किन्हीं विशेष सम्प्रदायों में नहीं है, वरन् सभी में पाई

जाती है। उदाहरण के लिए शनिवार को तेल दान किया जाता है। दान करना कोई बुरी बात नहीं, पर यह क्यों आवश्यक माना जा रहा है कि तेल ब्राह्मण को ही दिया जाये। शास्त्र कहते हैं दान देते समय भी सुपात्र का ध्यान रखना चाहिए। पर चू कि हमारे पूर्वज ब्राह्मण को ही दान देते चले आये है अत हम भी ब्राह्मण को ही दान दगे अन्य को नहीं, यह मान्यता कितनी घृणास्पद है। जब हमारे पूर्वजों ने ब्राह्मणों को दान देने की बात कही थी, तब के ब्राह्मणों और आज के ब्राह्मण मे तो आकाश पाताल का अन्तर है, परन्तु इस बात की चिन्ता किए बिना लोग लगे है रूढिवाद के चक्र मे। जीवित बाप की सेवा करने मे लज्जा आती है पर बाप की मृत्यु पर ब्राह्मणों को दावत, दक्षिणा और प्रत्येक वर्ष श्राद्ध के अवसर पर दावतें देना, हन्दकार निकालना, अस्थियों को हरिद्वार ले जाना आदि से क्या लाभ होता है, मृत आत्मा को अथवा ऐसा करने वाले समाज को? यह समझ पाना मेरे बस की तो बात नहीं। मैं जानता हूँ अन्य लोग भी इस के पक्षपाती नहीं हैं पर करते ऐसा ही हैं क्योंकि साहस नहीं है अनुचित रीति-रिवाजों को तोड़ने का।

एक महान् आत्मा ने कहा है—

"कोई भी बात इस लिए अनुकरणीय नहीं है क्योंकि उसे हमारे बड़े बूढे भी करते चले आये हैं। बल्कि देखना यह चाहिए कि उस मे औचित्य कितना है।"

किन्तु लोग रीति-रिवाजों और परिपाटी के सम्बन्ध मे औचित्य का प्रश्न उठाते हुए डरते हैं। टालस्टाय ने एक बार लोगों की इस मानसिक दासता को लक्ष्य कर के कहा था—

'लोग ससार मे अपने से पहले आये हुए लोगों की ही

मज़ाक करते रहते और आगे बढ़ने तथा प्राचीन प्रणालियों को सुधारने की चेष्टा न करते तो वह हमारा वर्तमान समाज जड़ हो जाता। इस की आगे की ओर होती प्रगति इस बात का सूचक है कि समाज चलन्य है और यह बुज़ुर्गों की कब्रों पर ही जीने का पक्षपाती नहीं है। महत्व अनुकरण का नहीं वरन पिछली दशा में आवश्यक तथा उत्तम परिवर्तन करने का है। इस संसार ने पीछे चलने वालों की कभी पूजा नहीं की। नया प्रकाश लाने वाले ही पूजे गए।

समाज गतिमान है, आगे बढ़ता हुआ मानव रूढ़ियों के बन्धन तोड़ता है। वह आगे जाता है और आगे बढ़ने की चेष्टा करता हुआ वह उन सब धर्मों और प्रणालियों के बन्धन से मुक्ति पाता जाता है जो उसके रास्ते की रुकावट होती हैं। वह मंज़िल की बढ़ती दुरूहता का मुक़ाबला नई आशाओं और नए विश्वासों से करता है। जब तक यह क्रम चलता है उन्नति होती रहती है।

भगवान महावीर आये उन्होंने रूढ़ियों के विरुद्ध संघर्ष किया लोगों को रूढ़ियों के मोह से मुक्ति दिलाने के लिए क्रांतिकारी सन्देश दिया। वे जब जगत में आये इस देश की क्या दशा थी? लोग मानते थे भाग्य के द्वार खोलने के लिए देवी देवताओं को प्रसन्न करो और उन्हें प्रसन्न करने का उपाय है यज्ञ करना। यज्ञों में पशुओं की बलि दी जाती थी। पशुओं की आहुति से भगवान प्रसन्न होंगे। यह भावना सारे देश में फैली हुई थी और इस कारण प्रतिदिन कितने ही पशु पक्षी की भेंट चढ़ते थे। क्या पशुओं के मांस से ही पवित्र यज्ञ सफल होगा? क्या वास्तव में देवी देवता पशुवध से ही प्रसन्न होते हैं? इन प्रश्नों पर कोई विचार तक नहीं

करता था। तब लोग यज्ञ करते थे पुराने जमाने से चली आई प्रथा को निभाने के लिए। रूढि की शृंखला उन की बुद्धि और मत पर पडी थी। आखों पर अतीत के प्रति अन्धश्रद्धा का परदा पडा था। भगवान ने इस घिनौनी रूढिवादिता के विरुद्ध आह्वान किया और जब लोगों की आखें खुलीं तब उन्हें ध्यान आया कि शास्त्र तो अहिसा का पाठ पढाते है और वे उन्हीं शास्त्रों में आस्था रखने के उपरान्त भी धर्म के नाम पर प्रभु के नाम पर, उस प्रभु के नाम पर जो अहिंसा की पूर्ण ज्योति है, जीव हिसा करते हैं, पशुओं के रक्त से हाथ रचते हैं तब देश के लोगां को होश आया और पूर्वजों का अनुकरण करने के नाम पर, रूढिवाद के सहारे चल रहा पशु सहार बन्द हुआ। लोग मानसिक एव बौद्धिक दासता से मुक्त हुए तो उन्हें अपना पाप दिखाई दिया।

आज भी लोग पूर्वजों से चली आ रही प्रथा का पालन करने के नाम पर कुछ ऐसे मिथ्यात्व के जाल मे फंसे है, जो मानवोचित नहीं हैं, जिनका कोई शास्त्रीय आधार नहीं है चूकि हमारे पूर्वजों ने पीपल के तने मे धागा लपेटा है, इस लिए हम उन की आज्ञाकारी सुसन्तान होने का दावा कर के पीपल के तने मे धागा बाधेंगे ही पीपल देवता की परिक्रमा करेंगे ही, चूकि हमारे पूर्वज कुए का विवाह करते आये है, अत हम उनके सुपुत्र होने के नाते कुए का विवाह रचायेंगे। विधुर रहकर मरना पाप है अत हम झाड़ झकाड़ के साथ विवाह कर के मरेंगे, क्योंकि हमारे पूर्वजों मे यह रीति चली आई है। यह सब बातें क्या बताती है? यही तो कि लोग बौद्धिक एवं मानसिक रूप मे गुलाम है उनकी बुद्धि पर रूढि के बन्धन जकडे हैं। अत दुख उठाते है। शास्त्र कहता है —

जावन्ति अविज्जा पुरिसा सव्वेते दुक्ख सम्भवा

अर्थात्—जितने अज्ञानी पुरुष हैं वे सभी दुःख पाते हैं। एक महापुरुष ने पूर्वजों के नाम पर चलती मूर्खताओं की निन्दा करते हुए कैसी सुन्दर बात कही है—

तातस्य कूपोऽयमिति ब्रुवाणा
क्षारं जलं का पुरुषा पिबन्ति॥

यह मेरे बाप का कुआं है, चाहे इसका जल खारा ही क्यों न हो मैं उसी का पानी पीऊँगा निकट में किसी ने मीठे जल का कुआं ही क्यों न बनवा दिया हो मैं अपने पिता के कुएं का छोड़ उसका जल नहीं पी सकता। यह बात तो कायर लोग ही कहा करते हैं। अर्थात् पिता के नाम पर खारे जल को पीने वाले कायर होते हैं। क्या आज ऐसे लोगों की बहुतायत नहीं है जो कायर की गिनती में आते हों? मैं समझता हूं पूर्वजों द्वारा प्रचलित गलत प्रथाओं का परित्याग करना ही उन्नति का उपाय है। पिछली भूलों का सुधार और नई उचित बातों की स्वीकृति ही मनुष्य को आगे ले जाती है। प्राचीन प्रथाओं और मान्यताओं में से मूर्खता पूर्ण बातों को छोड़ दीजिए और उन में से सब अच्छी बातों को अपने जीवन में बांध लीजिए, यही वीर पुरुषों का धर्म है। यही आपका कर्तव्य है। परन्तु लोग एक दम चरमसीमा (Extreme) पर ही जाकर रुकते हैं या तो रूढ़िवाद के इतने अन्ध भक्त बनेंगे कि आंखें मीच कर वही करते जायेंगे जो पहले से होता चला आया है। अथवा रूढ़िवाद का विरोध करते २ अतीत को घृणा की दृष्टि से देखने लगेंगे। प्राचीन विचारों का ही खण्डन करने पर तुल जायेंगे। मानो उनकी दृष्टि में इनके पूर्वज बिल्कुल ही मूर्ख थे और अकेले वे ही बुद्धिमान पैदा हुए हैं।

अतीत के प्रति घृणा अथवा निरादर का भाव रखने

वाले ऐसे लोग अपने को ऐसे स्वप्न लोक में ले जा रखते हैं जहा उनकी कल्पनाओं की भले ही रक्षा होती हो पर वहां वास्तविकताओं का कोई स्थान नहीं होता सुधार के नाम पर वे पतन की ओर बढने लगते हैं। यहा मुझे एक घटना याद आई।—एक युवक था। था बडा चञ्चल। कुछ अनुचित प्रथाओं से चिडकर वह रूढिवाद का विरोधी बना और फिर जा फंसा ऐसे वातावरण में जहां पूर्वजों की आलोचना ही की जाती थी। एक दिन वह एक साधु से जा उलझा। कहने लगा—'महाराज ! कहा आप पुरातन के चक्कर मे फंस गए, यह नियम, यह सिद्धान्त, यह त्याग और सन्यास की बातें बहुत पुरानी पड गईं, उतारिये मुह पर बंधी यह पट्टी, फेंकिए यह ओघा। आइये जीवन क्षेत्र में, कुछ कीजिए। यह आपका वेष, आपकी दिनचर्या सब कुछ बहुत पुराने ज़माने की बातें हैं, ज़माना बहुत आगे निकल गया है आप भी अपने को बदल डालिए। पुरानी मान्यताओं से अब काम नहीं चलेगा।"

जब वह युवक इसी प्रकार की बहुत सी बातें कर चुका और साधु बहुत तङ्ग आ गया तो उस ने पूछा—"नौजवान ! क्या वे सारी चीजें बदल डालनी चाहिए जो पुरानी पड गई हों ?"

युवक ने कहा—"हां महाराज ! वस्त्र भी तो पुराने पड जाने पर बदल डाले जाते हैं। पर आप हैं कि पुरानी बातों से चिपके पड़े हैं।"

साधु ने उत्तर दिया—"तो फिर तुम अपना बाप क्यों नहीं बदल डालते वह भी तो पुराना पड गया है। वह ६० वर्ष का हो चुका अब कोई नई उम्र का ढूंढ लो।"

युवक ने साधु का प्रश्न सुना तो बगलें झांकने लगा। इसे कहते हैं सौ सुनार की एक लुहार की।

उस चपल युवक की प्रवृत्ति जैसी भावना ही आज जन के प्राचीनता विरोधी दृष्टिकोण के पीछे काम करती है। कुछ लोगों ने नवीनता के नाम पर प्राचीनता को बिल्कुल ही कूड़े के ढेर पर फेंकने की नीति अपनाई है। यह दृष्टिकोण भी बौद्धिक दिवालियेपन का प्रमाण है। नवीनता के मद में प्राचीन मान्यताओं को ठुकरा देना जो मानव समाज के युगों युगों से चले आ रहे सत्य शाश्वत की देन हैं नवीनता की बौद्धिक दासता ही तो है। बुद्धि के इन बन्धनों को तोड़ना होगा रूढ़िवाद का उन्मूलन होना चाहिए पर उस के उन्मूलन का यह अर्थ कदापि नहीं है कि हम उन सब बातों का भी तिरस्कार करें जो मानव के कल्याण के लिए महापुरुषों ने ज्ञान-सागर से प्राप्त किए रत्नों के रूप में समाज को सौंपी थी और हमारा समाज जिसे महापुरुषों की धरोहर के रूप में अपने आंचल में सम्भाले है। जो प्रत्येक पीढ़ी आने वाली पीढ़ी को सौंपती रही है। हां प्राचीनता के नाम पर चलने वाली थोथी मान्यताओं को समाज के जीवन से काट डालना चाहिए।

कुछ लोगों ने इस बात का अनुभव भी किया और अनुचित प्रथाओं और मान्यताओं को तिलांजली देने की ओर समाज का ध्यान आकर्षित किया। तब एक और मुसीबत खड़ी हुई। बुद्धिहीन लोगों ने जब सुना कि पुरानी खराब बातों को काट कर अच्छी बातें स्वीकार कर लेना ही बुद्धिमत्ता है तो अपनी बुद्धि की कसौटी पर समस्त प्राचीन विचारों को परखने लगे। उनके अर्थों को अपने विचारों के अनुसार तोड़ने मरोड़ने लगे और जो उनको रुचिकर नहीं हुए उन्हें

अनुचित बता कर उन की ओर से आंख फेर लेने का उपदेश करने लगे। यह बात आज बहुत जोरों से चल रही है। उचित ग्रहण करो अनुचित को काट दो इस नारे की आड में उचित के साथ भी अन्याय हो रहा है। बिल्कुल वही बात हो रही है जो एक बाबू जी के पाजामे के साथ हुई थी।

कहते हैं एक बाबू जी ने पाजामा सिलाया। नाप लेना दरजी भूल गया और उसने पूरे कपड़े का ऐसा पाजामा सी दिया जो उनको लम्बा था। जब बाबू जी उसे पहनने लगे तो उन्हें दरजी पर बहुत क्रोध आया। अपनी मा से जा कर बोले—"दरजी ने पाजामा लम्बा सी दिया है, मुझे आज ही वह पहिन कर कार्यालय मे जाना है, तुम चार गिरह काटकर सी देना।"

माता असमर्थता प्रगट करते हुए बोली—"बेटे। मैं तनिक पड़ोस मे जा रही हू, तू बहू से सिलवा ले।"

बाबू जी ने पत्नी से कहा। पत्नी बोली—"देखते नहीं रोटी को देर हो रही है, आटा गून्ध रही हूँ, इसे बीच में कैसे छोड़ू लडकी से सिलवा लो।"

बाबू जी पाजामा ले कर लडकी के पास गये, लडकी बोली—"पिता जी। मैं तो अध्यापिका जी का बताया काम पूरा कर रही हूँ, स्कूल का समय भी तो हो रहा है, आप किसी और से सिलवा लें।'

जब पत्नी को यह पता चला तो उसने पतिदेव के रुष्ट हो जाने के भय से कहा—पाजामा खूण्टी पर टाग दो, मैं आटा गून्ध कर ठीक कर दूगी। बाबू जी ने ऐसा ही किया, पाजामा टागा और नहाने चले गए। माता पड़ोस से लौट कर आई और सोचने लगी, बेटे ने पाजामा सीने को कहा था, जरा

सा काम है मैं ही किए देती हूं और पाजामा उतार कर चार गिरह काट कर सी दिया। पत्नी को भी कामसे फुरसत मिली तो उसने भी अपना कर्तव्य पूरा करने के लिए पाजामा उतारा और चार गिरह काटा कर दिया। कुछ ही देर बाद लड़की ने सोचा, पिता जी ने एक काम बताया और मैंने यहीं नहीं किया यह बुरी बात है, लेकिन मां ही तो काम है बता किए देती हूं। अतः उसने भी चार गिरह काटा और नीचे से सिलाई कर दी। बाबू जी स्नान करके आये और खुशी खुशी पाजामा पहनने लगे देख कर अचम्भे में पड़ गए, वह तो पाजामा नहीं था अब तो कच्छा (under wear) हो चुका था।

यही बात धार्मिक मान्यताओं और आदर्शों के साथ भी चल रही है कुछ लोग अनुचित को काटने के चक्कर में उचित भी काट रहे हैं। प्रत्येक अपनी इच्छा से काट करता है। जानते हो, इस से कितनी हानि हो रही है महापुरुषों के अनुभवों की? जो व्यक्ति उन आदर्शों और सिद्धांतों का मूल्य नहीं समझता उसे उन में से कुछ काटने का अधिकार कैसे है पर लोग अनधिकार चेष्टा करते हैं व नवीनता के बाधक बन रहे हैं।

मैं आप से कहता हूं कि बन्धन कोई भी हो वह आप को स्वतन्त्र नहीं रहने देता, आप यदि स्वतन्त्र होना चाहते हैं तो बन्धन तोड़ डालिए। रूढ़ियों के भी बन्धन तोड़िए पर सावधानी के साथ। कहीं सड़े हुए के साथ ? अच्छा अंग भी न कट जाये। सामाजिक बौद्धिक और मानसिक सभी प्रकार के बन्धन आप के लिए दुखदायी हैं आपके रास्ते के रोड़े हैं। आप अपनी स्वतन्त्रता के लिए संघर्ष कीजिए। आप

की बुद्धि पर अज्ञान का, आत्मा पर राग और द्वेष का, मन पर विकारों का और देह पर भोगलिप्सा का बन्धन पडा है। आप की आत्मा बन्धनों के बीच फड़फड़ा रही है। ये बन्धन किसी दूसरे के उत्पन्न किए हुए नहीं हैं। हमारे अपने ही ईर्षा और द्वेष के विकारों ने इन को जन्म दिया है।

बहुत पुराने समय की बात है। एक गाय और घोड़े में बड़ी मित्रता थी। दोनों एक जंगल मे स्वतन्त्रतापूर्वक विचरण करते थे। एक दिन घोडे की गाय से किसी बात पर झड़प हो गई, और वह द्वेष के आवेश में एक मानव के पास आकर बोला कि—गाय के स्तनों में अमृत जैसा दूध भरा पड़ा है, तुम उसे अपने प्रयोग में क्यों नहीं लाते। भय मत मानिए। मेरी पीठ पर बैठ कर डंडे से गाय को अपने वश मे कर लीजिए।

मनुष्य ने घोड़े की युक्ति से गाय को खूण्टे पर ला बाधा। परन्तु दूसरे खूण्टे पर उसने घोड़े को भी बांध दिया। घोड़े ने प्रतिरोध किया, तो बन्धन की पीडा से कराहती हुई गाय बोली—बस भैय्या! अब बंधे रहने मे ही खैर है। मनुष्य मेरा दूध पिएगा और तुम्हारी पीठ पर सवारी करेगा। यह सब तुम्हारे विकार का ही फल है।

यदि आप सुख चाहते हैं तो इस प्रकार के सब विकारों के बन्धन तोड डालिए। तभी सच्चा आत्म सुख प्राप्त हो सकेगा।

पटियाला }
चातुर्मास }

११–८–५४

प्राचीनता से नवीनता की ओर

दो 'लोकों' की दूरी

एक दिन की बात आपको सुनाता हूं। सुनिए और मनन कीजिए। पुरानी दिल्ली के एक इतिहासविद् से किसी यात्री ने पूछा—"लाल किले से राष्ट्रपति भवन कितनी दूर है?" उत्तर मिला—"यही होगा कोई दो ढाई सौ वर्ष दूर।" प्रश्नकर्त्ता जो पहली बार ही दिल्ली आया था, इतिहास-विद् का मुंह ताकने लगा। उसे कुछ शंका हुई। भ्रम निवारणार्थ, उसने अपने प्रश्न को स्पष्ट करने के लिये कहा—"मैंने लाल किले से राष्ट्रपति भवन की दूरी पूछी थी।"

इतिहासज्ञ ने गम्भीरता पूर्वक उत्तर दिया—"जी हां! मैंने भी उन की ही दूरी बताई थी।"

यात्री ने उसे ऊपर से नीचे तक देखा और सोचा कोई पागल है। सड़क पर जाते हुए रिक्शे को रुकवाया और वही प्रश्न किया, उसे मनोवाञ्छित उत्तर मिल गया।

इतिहास-विद् सोच रहा था—लोग दूरी को मीलों और फर्लांगों के पैमाने से ही क्यों मापते हैं? लाल किला और राष्ट्रपति भवन दो युगों-अथवा-दो व्यवस्थाओं के प्रतीक हैं

उन की दूरी का अनुमान मीलों और फर्लांगों से नहीं लगाया जा सकता। उन के बीच में एक पूरे इतिहास की दूरी है, इस इतिहास की नाप वर्षों और शताब्दियों से ही हो सकती है।"

वह इतिहास-विद् था उस के सोचने का अपना तरीका था, लेकिन यह दृष्टिकोण कितना विवेक पूर्ण है। यदि हम चीजों को गहरी नजर से देखने लगें तो हमारे सोचने विचारने का तरीका ही बदल जाये। यह परिवर्तन समाज के जीवन को ही बदल सकता है।

लेखा जोखा

हमारे देश के प्रत्येक अङ्ग पर प्राचीनता के पदचिन्ह विद्यमान हैं। प्राचीन नगरों के अवशेष, प्राचीन कला कृतिया, अजन्ता की गुफाएं, मोहन जोदड़ो की खुदाई से प्राप्त प्राचीन वस्तुए जो अपने युग के मानव जीवन की गाथा मूक वाणी मे कहती हैं, और प्राचीन ग्रन्थ, यह सब हमारे प्राचीन सभ्यता संस्कृति, स्थिति, इतिहास और जीवन पद्धति के प्रमाण हैं, इन के हृदय में हमारे पूर्वजों की गाथा निहित है। प्राचीन कला कृतियां 'अजायबघरों' मे एकत्रित कर देते हैं, ताकि लोग देख सकें कि कितने वर्षों मे हम कहां से कहा पहुच गए हैं ? और यह उन्नति अथवा प्रगति का लेखा जोखा करने में बहुत सहायक होता है।

किसी अजायब घर मे जाइये। बहुत सी वस्तुएं देख कर आश्चर्य होगा। बहुत सी वस्तुओं पर हंसी आयेगी। क्योंकि कुछ वस्तुएं हजारों वर्ष पुरानी ऐसी मिलेंगी जिन से कला के शैशव काल का चित्र आंखों के सामने आ जाता है। और हमें गर्व होता है मानव समाज की उन्नति पर, कला के विकास पर।

पर क्या हम मानव चरित्र का भी कोई मापदण्ड पर नाप सकते हैं? यदि यह सम्भव हो तो वहाँ जाकर सम्भव है सदाचारी एवं विचारशील व्यक्ति लज्जा के मारे सिर न उठा सकें। क्योंकि चरित्र के क्षेत्र में मानव कुछ शताब्दियों की दूरी तय करके जहाँ पहुँचा है उस का प्रतिमान सूचक चिन्ह ऊपर चढ़ने की अपेक्षा इतना नीचे पहुँच गया है कि उसे किसी भी मापदण्ड के द्वारा प्रगट नहीं किया जा सकता।

सभ्यता का प्रतिनिधित्व

जब गांधी जी लन्दन में बृटेन-नरेश से भेंट करने पहुँचे उनके शरीर पर लंगोटी और चादर थी। समस्त परम्पराएँ तोड़ कर गांधी जी को भिखारी-वेष में ही सम्राट से भेंट की आज्ञा दी गई तब अंग्रेजी पत्रों में कई दिन तक इस बात पर बड़ा रोष प्रगट किया गया। कुछ पत्रों का विचार था कि यह सम्राट का अपमान है। पर एक पत्र ने इस विचार पर अपने विचार प्रगट करते हुए लिखा—

"Gandhi's dress is a Symbal of poor Indıa It is a silent protest against British Imperialism. He is a representative of the country which is called by the name of 'Golden bird.

"गांधी की पोशाक निर्धन भारत का प्रतीक है। यह बृटिश-साम्राज्य से मूक विरोध प्रदर्शन है। यह उस देश का प्रतिनिधि है जिसे सोने की चिड़िया कहा जाता है।"

परन्तु इस अवसर पर गांधी जी ने शिष्टाचार, नम्रता और धैर्य के उन सभी सिद्धान्तों का पालन किया जो भारतीय सभ्यता के अंग हैं। उन्होंने उस अंग्रेज जाति के प्रति 'प्रेम' प्रगट किया

जिस के साम्राज्य के विरुद्ध भारत अहिंसक संग्राम कर रहा था कुछ अंग्रेज गांधी जी के इस व्यवहार को देख दंग रह गए। भारतवासी भी इस महान आदर्श को समझने में असमर्थ थे। पर विवेकशील व्यक्ति समझते थे कि भारत ने चाहे अपना धन, सम्पत्ति और वैभव खो दिया हो, पर भारतीय संस्कृति की आत्मा आज भी जीवित है। गांधी जी का व्यवहार अंग्रेजी साम्राज्य को एक चुनौती थी—"तुम हमारी सम्पत्ति लूट सकते हो पर हमारी सभ्यता के वे गुण जो हमें मानव जाति के इतिहास में उज्ज्वल रक्खेंगे, कभी नहीं छीन सकते।"

गांधी जी प्रतीक थे भारतीय संस्कृति के। काश! हम गांधी जी की इन भावनाओं का मूल्य आङ्क पाते। दूसरे देशों के सामने डींग हाकने की बात जाने दीजिए। हमारे देश की वास्तविक दशा आज क्या है? क्या विदेश जाने वाले भारतीय हमारी प्राचीन सभ्यता का प्रतिनिधित्व कर पाते हैं?

साख कब तक?

एक सेठ थे, बड़े ईमानदार। स्वर्ण विक्रेता थे। खरा सोना बेचते थे। इस से उन्हें मुनाफ़ा तो कम हुआ, पर उनकी दुकान की साख बड़ी हो गई। प्रत्येक व्यक्ति जानता है कि सोने में खोट नहीं होगा।

सेठ जी का एक पुत्र था, कभी दुकान पर न बैठता, सदा आवारागरदी मे मस्त रहता। सेठ कहा करते—"मेरे मरने के बाद, मैं जानता हू, तू भूखों मरेगा।"

आखिर एक दिन सेठ जी मर ही गए। लोगों ने उनके पुत्र से पूछा—"कहो भाई! कितना धन छोड़ गए लाला जी?" सेठ-पुत्र बोला—"अभी हिसाब नहीं लगाया।"

दूसरे दिन फिर उस व्यक्ति ने वही प्रश्न पूछा। सेठ-पुत्र ने वही उत्तर दिया तब आश्चर्य चकित होकर पूछा—"क्या इतना सोना छोड़ गए कि दो दिन में हिसाब ही नहीं लगा सके उस के मूल्य का?"

आखिरकार सेठ-पुत्र बोला—"हां, वे जो छोड़ गए उस का हिसाब आज नहीं, कल बता सकूंगा, जब, वह बिक जायगा।"

मे नगद अथा 'चाँदी' मार पैठ गई और सेठ पुत्र ने पीतल सोने के दामों बेचनी आरम्भ कर दी। फर्म की साख थी, काम चलता गया, पर कहीं तो, कभी कोई एक ग्राहक ने बिगड़ कर उस से कहा—"यह पोल चाल हो जी, सोने के दामों पीतल देते, तुम्हें लज्जा नहीं आती!"

सेठ-पुत्र ने बिगड़ कर उत्तर दिया—"बिगड़ते क्यों हो लाला! मैं सोना नहीं फर्म की साख बेचता हूँ साहब।"

तो सेठ-पुत्र साख बेचता रहा पर साख तो एक प्रकार की भाप है जब चली जाती है तो लौटती नहीं। साख कब तक बिकती। लोग फर्म के नाम पर थूकने लगे। सेठ पुत्र चौराहों में बैठ जाने लगे, तो किसी ने कहा—"सेठ किसी मशहूर फर्म के मालिक थे तुम ने अपने हाथों अपनी दुकान खोई।"

निर्लज्ज सेठ-पुत्र हँस कर बोला—"भाई मशहूर तो फर्म आज भी है। बात इतनी है बाबा जी सोने के नाम पर सोना बेचने में मशहूर थे और मैं पीतल बेचने में। हमारे देशवासी भी क्या इसी सेठ पुत्र के पद चिन्हों पर नहीं चल रहे? भारतीय संस्कृति व सभ्यता की उच्चता एवं महानता को बेच बेच कर खाने का प्रयत्न किया जा रहा है। पर यह प्रयत्न करते २ बहुत दिन हो गए। फर्म की साख कब तक बिकेगी।

प्रगति की ओर

यह प्राकृतिक नियम है कि ज्यों ही मनुष्य के मस्तिष्क में चलने का विचार प्रस्फुटित होता है तुरन्त उस का पैर उठ जाता है और बढ जाता है आगे, प्रत्येक का पहले से आगे पडता है पर जब मुंह आगे की ओर हो पैर पीछे की ओर डाले जायें तो क्या होगा ? गिर पडने के अतिरिक्त और क्या होने वाला है ?

कितनी शताब्दियां मनुष्य अपने पीछे छोड चुका और बढ आया उस युग तक जहा आकर विज्ञान ने मृत्यु को चुनौती देने की तैयारियां आरम्भ कर दीं। पर प्राचीन युग की वे मान्यताएं, संस्कृति के वे गुण जिन के कारण भारत को अपने पर गर्व था भारत वासी कहीं पीछे ही छोड आये। अतएव प्राचीन की ओर देखना पडता है, वरना प्रगति के पथ पर जाने वाले मुड २ कर नहीं देखा करते।

आर्यवर्त से इण्डिया

कहते हैं इस देश का नाम कभी आर्यवर्त था। आज आर्यवर्त विस्मृति के गर्त में जा पड़ा है और यह नाम हमारे क़ाफ़ले के पीछे उडती हुई धूल की उस मोटी चादर में छुप गया है कि मुंह फेर कर देखने पर भी उस की छाया तक दिखाई नहीं देती। हा, इतिहास के पन्नों पर वह शब्दों के काले आवरण में अवश्य छुपा दिखाई देता है भारत के अपने संविधान मे भी देश का नामकरण भारत अथवा *India* (इण्डिया) किया गया है। अच्छा ही हुआ कि आर्यवर्त सञ्ज्ञा को पुनर्जीवित नहीं किया गया। क्योंकि 'आर्यवर्त' को नाम से नहीं चरित्र से ही पुनर्जन्म दिया जा सकता है।

यू तो आज भी कितने ही लोगों को 'आर्य' की संज्ञा से मोह है और लोगों ने आज भी 'आर्य' के नाम पर संस्थाएं बना रखी हैं। व्यक्तियों के नामों के साथ भी कहीं२ 'आर्य' का प्रयोग होता है। पर मैं नहीं कह सकता कि 'आर्य शब्द के साथ यह खींचतान करके समाज को कौन सा लाभ पहुँच रहा है।

'आर्य' किसी जाति अथवा समाज का सूचक शब्द नहीं है। आर्य का अर्थ है श्रेष्ठ। प्रत्येक वह व्यक्ति जो श्रेष्ठ आचरण करता है, आर्य कहा जा सकता है। शास्त्रानुसार 'आर्य' के लक्षण निम्न प्रकार हैं—

शान्त चित्तश्च दोन्तश्च सत्यवादी जितेन्द्रिय।
दाता दयालुर्नम्रश्च आर्य स्यादष्टभिर्गुणै॥

प्रसन्नचित्त, सुख दुःख को हर्ष या विषाद बिना भोग लेना मन को अपने वश में रखना, केवल सत्य ही बोलना इन्द्रियों को अपने आधीन रखना सदा दान परायण रहना पदहित साधन में तत्परता दूसरों का दुःख देख कर हृदय द्रवीभूत हो जाना विनय सम्पन्न रहना यह आठ प्रकार के गुण जिस में हों उसे आर्य समझना चाहिए।

इसी लिए भगवान महावीर ने कहा था —

'आरियत्तं पुणरवि दुल्लहं'

'आर्यत्व पाना कठिन है भगवान की अमर वाणी के यह शब्द जहां मनुष्य को 'सावधान' करते हैं वहीं एक प्रकार की चुनौती भी देते हैं इन शब्दों में आह्वान है—"कौन है वह वीर मनुष्य जो अपने को आर्य की संज्ञा दे सकता हो? जो है वह आये और 'आर्यत्व' की कसौटी पर खरा उतर कर दिखाये।"

एक युग था जब लोगों ने इस चुनौती को स्वीकार

किया वे भगवान के सन्मुख आये। लोगों ने अपने सुख वैभव तक का त्याग किया, केवल अपने को श्रेष्ठ मनुष्य सिद्ध करने के लिए। क्योंकि मनुष्य की श्रेष्ठता उस की आत्मोन्नति की भी गारण्टी है।

कितनी दूरी?

आज और उस बीते हुए युग में कितनीदूरी है? शताब्दियों की। अर्थात् उस युग को जिसमें 'आर्यत्व' की भावना सारे मानव समाज के चरित्र की आधार थी, हम सैंकड़ों शताब्दियां पीछे छोड़ चुके हैं, हम वहुत आगे निकल आये हैं, इतने आगे कि इस यात्रा की दूरी को शताब्दियों में ही नापा जा सकता है। पर इतनी दूर आए हुए मानव और शताब्दियों पूर्व के मानव मे कितना अन्तर है? कितनी दूरी है? वता सकेगा कोई?

हमारे समाज में एक दिन आचरण और व्यवहार का मूल्य था, पर आज उसका स्थान वातों ने ले लिया है। लोग वनावट के दास होगए हैं। प्राचीन उज्ज्वल लेविल लगाकर नवीन नकली वस्तुए वेचने के काम मे श्रेष्ठता सिद्ध करना चाहते हैं। मिथ्या व्यवहार व्यापार मे ही नहीं जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मे छा गया है, अतएव लोग जिन सिद्धातों का नाम लेकर आदर सम्मान पाना चाहते हैं, उन्हे जीवन में उतारने का नाम नहीं लेते। प्राचीन युग मे सिद्धात पर अमल करना मनुष्य का ध्येय होता था। आज सिद्धात पर नाम पाना लक्ष्य होता है।

वास्तव मे कितना अन्तर है प्राचीनता और नवीनता मे?

अमरीका वैभव के अहंकार से चूर था, विश्व में अपना प्रभुत्व जमाने के लिए हाथ पाव पसार रहा था और उसके एक हाथ में अस्त्र और दूसरे हाथ मे वाइविल थी। वह टैंक पर वैठा क्रिश्चीनेटी *(Christianity)* की पताका फहरा रहा था।

उस देशमें एक भारतवासी पहुँचा और अपनी वाणी के बलसे उसने सारे अमरीका पर अपनी धाक बैठा दी। यह चमत्कार क्या केवल उसके वक्तृत्व का था? नहीं वरन् भारतीय सभ्यता और प्राचीन विचारों का यह चमत्कार था जिसने स्वामी विवेकानन्द को अमरीका में जगमग नक्षत्र की भांति चमका दिया था। वह भारत की वाणी थी जो विवेकानन्द के कण्ठ से बोल रही थी।

विवेकानन्द का वह स्वर आज भी गूंज रहा है—

An ounce of practice is worth than twenty thousand tons of talks"

"बीस हजार टन उपदेश देने के बदले एक औंस आचरण में लाना अधिक श्रेष्ठ है।"

यह है प्राचीन भारत का स्वर। इस स्वर के सामने नवीन विचार, चाहे वह विश्व के किसी भी कोने से क्यों न उठें मन्द पड़ जाते हैं। आज विश्व उसी अमर सिद्धान्त के लिए भारत की ओर ताके तो आश्चर्य नहीं। क्या हमारा देश अपने आचरण से यह सिद्ध करेगा कि यह वही भारत है जिसे अपनी संस्कृति पर गर्व है।

प्रकाश अपरिवर्तित

प्राचीन शास्त्र हमारे लिए प्रकाश-पुञ्ज हैं। इस विश्व में जबकि तृष्णा मोह और वैभव की भूख ने मानव बुद्धि को विकृत कर डाला है, भटकाव से बचाने के लिए हमें उस प्रकाश की आवश्यकता है, जो हमारे इतिहास की धरोहर है। प्रकाश कभी पुराना नहीं पड़ता। ज्ञान को कभी जंग नहीं लगता। विवेक का मूल्य कभी नहीं गिरता।

जब हमारे प्रधान मन्त्री पं० जवाहर लाल नेहरू विदेशों में जाकर घोषणा करते हैं—

"भारत विश्व में शान्ति चाहता है। हम शस्त्रास्त्र की दौड़

को विश्व-शान्ति के लिए खतरा समझते हैं। हम प्रत्येक देश की स्वतन्त्रता का आदर करते हैं, क्योंकि हमें अपनी स्वतन्त्रता प्यारी है।"

तव उनके शब्दों मे हमारे देश की आत्मा गूञ्ज जाती है। हमारे देश का इतिहास बोल उठता है, वह इतिहास जो प्राचीनकाल से चलता हुआ इस स्थान पर आ गया है, जहा हमें प्राचीन आदर्शों को पुनर्जीवित करने की स्वतन्त्रता प्राप्त है। जहा हमें अपनी सभ्यता पर गर्व करने का अधिकार है।

मैं फिर कहता हू कि आर्यत्व किसी की जागीर नहीं। न आर्य समाज की वपौती है न महर्षि दयानन्द की विरासत। आर्यत्व पर न वेद का अधिकार है न पुरान का। आर्यत्व एक आदर्श है और इस आदर्श की स्थापना भारतके उन सव महापुरुषों ने की थी जो मनुष्य को सर्वश्रेष्ठ रूपमे देखने के लिए तपस्या कर रहे थे उन सिद्धातों का पालन न करना, जो मनुष्य को 'आर्य' की श्रेणी में ले जाते हैं, और आदर्शहीन होकर भी अपने को आर्य कहना 'आर्यत्व' को कलकित करना है। प्राचीन आदर्श हम से न्याय मागता है। नवीनता के नशे मे हम प्राचीनता को कलंकित न करें।

जगत सतत गतिशील है। परिवर्तन उसका स्वभाव है। किन्तु सत्य शाश्वत है, उसे परिवर्तन चक्र नहीं वदल सकता। दो और दो चार होते हैं। प्राचीन युग मे भी चार ही होते थे। और आज भी चार ही होते हैं। कितने ही युग क्यों न वदले अंक गणित का सिद्धात प्राचीन होने पर भी अपरिवर्तनीय रहेगा। क्योंकि वह अक गणित का आधार है। इसी प्रकार जीवनके सिद्धात नहीं बदला करते। आदर्श कभी पुराने नहीं पडते। ऋतुए वदलती रहती हैं, परिस्थितिया वदल जाती हैं और जीवन की दशायें भी वदल जाती हैं, पर शैशव जवानी और बुढापे में त्रिकाल 'प्राण' वही रहेंगे, हमारे प्राचीन आदर्श वही रहेंगे और रहने चाहिए।

गंगा का जल पूजनीय बताया गया है क्योंकि उसे आप हजार
के किसी कोने में ले जाइये दुर्गन्ध नहीं आती। हमारे आदर्श भी
प्रकार पवित्र हैं। नवीनता के नशे में हम अपनी सभ्यता व संस्कृ
की रक्षा करना भूल गये तो प्राचीनता से इतनी दूर चले जाने पर
भी हम 'प्रगति' का दावा नहीं कर सकते।

हमें नवीनता के नशे में प्राचीनता की अवहेलना नहीं करनी
बल्कि प्राचीनता के आशीर्वाद से प्राप्त नवीन आदर्शों को ले कर
आगे बढ़ना प्रत्येक धर्म समाज और राष्ट्र के लिए श्रेयस्कर है। य
प्राचीनता की आत्मा को जीवित रखते हुए नवीनता ने शरीर धार
किया तो प्रगति का मार्ग सुगम हो जाता है। मेरे विचार
प्राचीनता ही नवीनता की जननी है। जननी कितनी ही
क्यों न हो किन्तु आगे आने वाली युवा सन्तान के लिए वह पूजन
तथा आदरणीया होती है।

पटियाला }
आसुमाम }

१२—७—५४

पहले इन्सान तो बनें !

भरी दुपहरिया दीप जलाए

अपनी बात कहने से पहले आज मैं आपको यूनान की एक घटना सुनाऊं। बात पुरानी है। दिन के बारह बजे थे। सूर्य का प्रकाश पूर्ण यौवन पर था। एथेंस नगर के लोगों ने आश्चर्य चकित हो कर देखा यूनान के एक प्रसिद्ध दार्शनिक को हाथ में दीपक लिए। दार्शनिक दीपक के प्रकाश में कुछ खोज रहा था। इस आश्चर्यजनक दृश्य को देखने सैकड़ों व्यक्ति एकत्रित हो गए।

लोगों ने दार्शनिक को रोक कर पूछा—"भरी दोपहरी में दीपक लिए क्यों घूम रहे हो ?"

"मैं इन्सान को ढूंढ रहा हूँ।"

दार्शनिक का उत्तर सुन एकत्रित जन समुदाय खिल खिला कर हंस पड़ा। लोगों ने कहा— 'हम तुम्हारे सामने सैकड़ों आदमी खड़े हैं क्या तुम्हें दिखाई नहीं देता ?"

दार्शनिक ने अपने चारों ओर एकत्रित जन समुदाय को घूर कर देखा और गरज कर बोला- 'क्या तुम भी मनुष्य हो? यदि तुम

भी मनुष्य हो तो फिर राक्षस कौन है ? रात दिन छल कपट करते हो स्वार्थों के लिए कुत्तों की भांति लड़ते झगड़ते हो पेट पालने के लिए चील कौवों की भांति दौड़ते फिरते हो, वासना शोषण और अन्याय तुम्हारी रग रग में व्याप्त हैं, तृष्णा और मोह के नशे में अन्धे हो और विवेक से मुंह मोड़ चुके हो फिर बोलो तुम में और पशु में क्या अन्तर है ? नहीं नहीं; मुझे मानव चाहिए मानव वेष धारी पशु नहीं।"

दार्शनिक की बात खरी थी, और खरी बात में कुछ कड़वाहट होती ही है। सम्भव है उस की बात किसी को कड़वी लगी हो, पर मानव की मनोगति पर करारी चोट थी। इस चोट से मानव तिल मिला उठे तो आश्चर्य की बात नहीं। इस से एक तड़प इन्सान में पैदा होनी चाहिए। आत्म निरीक्षण करना चाहिए, कहीं हम मनुष्य के रूप में पशु जैसा जीवन तो व्यतीत नहीं कर रहे ! मनुष्य के पशुवत् जीवन को देख कर ही एक विचारक कह उठा था—

"मनुष्यरूपेण मृगाश्चरन्ति"

अर्थात— 'मनुष्य के रूप में मृग घास चर रहे हैं।"

नक्कार खाने में तूती

मनुष्य और पशु में क्या अन्तर है ? एक विचारक कहता है— "मनुष्य में से विवेक निकाल दो, तो बचे वह पशु होगा।"

केवल 'विवेक' की वृद्धि ने ही पशु को मनुष्य बना रखा है। और शास्त्रों ने उसे द्विमुख परमेश्वर तक की संज्ञा दे दी है। परन्तु उसी "द्विमुख परमेश्वर" की वर्तमान दशा को देख यूराप का एक विचारक बोल उठा—

'संसार में एक ऐसी भी वस्तु है, जिस का उत्पादन द्रुतगति से बढ़ रहा है। संसार में वह बेमूल्य मिलती है पर आजकल यदि

कमी प्रतीत होती है तो कम केवल उसी की।"

इस पहेली का 'नायक' भी मनुष्य ही है। एक नहीं अनेक दार्शनिकों, विचारकों एवं धर्म गुरुओं ने भटकते मानव की दशा पर अश्रुपात किया है, पर नक्कार खाने मे तूती की आवाज कौन सुनता है। वैभव के पीछे पागल हुए मानव पर विवेक के द्वार बन्द होते जाते प्रतीत होते हैं।

रोग विकार का लक्षण

बिना कारण के कोई कार्य नहीं होता। मनुष्य की आखें सामने की ओर होती है, यह बात इसकी प्रतीक है कि स्वभाव से मनुष्य विकास प्रिय है। धारा आगे की ओर बहती है, वह अपना रास्ता पहाड़ों को तोड़ कर भी बना लेती है। और मनुष्य की विकास-कामना भी पहाड़ों और जंगलों को अपने पथ से हटाती हुई आगे बढती हे। विनाश और विकास प्रकृति का द्विरूपी स्वभाव है। प्रत्येक विनाश के गर्भ में विकास तथा अभ्युदय का बीज विद्यमान होता है। अतएव कोई कारण नहीं कि हम पथ भ्रष्ट मानव समाज की वर्तमान दशा को देख निराश हो जायें। निराशा कायरता का ही दूसरा रूप है। और कायरता मनुष्यता की शत्रु है।

शरीर के लिए 'अग्नि' की आवश्यकता है। हमारे शरीर में आग है, गरमी है। परन्तु जब शरीर मशीनरी में कोई दोष आता है तो गरमी बढ जाती है। ज्वर बढ जाता है और 'ताप' की वृद्धि मनुष्य को रोगी बना डालती है। किन्तु ताप की बहुतायत स्वयं कोई रोग नहीं है, यह विकार का लक्षण है। आज समाज में जो रोग है, उस का मूल ढू ढे बिना रोग शांत नहीं होगा। समाज में रोग है अन्धानुकरण का, अन्धविश्वास का और अविवेक का तथा इन सब से उत्पन्न अश्रद्धा का। इन सब के मूल की खोज कीजिए पता चलेगा अविवेक या अज्ञान ही वहां कुण्डली मारे बैठा है।

शरीर को प्रधान मानकर व्यक्ति उसे सन्तुष्ट करने पर जुट गया है। और मानना ही पड़ेगा कि इस क्षेत्र में मनुष्य की जो उपलब्धियां हैं, वह आश्चर्यजनक हैं। समय आ गया है कि लोगों को यह बताया जावे कि तुम शरीर नहीं हो शरीर से भिन्न कुछ हो, और उस कुछ को आत्मा अथवा अन्तःकरण कहते हैं।

दास न बनें

एक सेठ के घर में रात्रि का एक चोर घुस आया। अपने पिता की सम्पत्ति चोरी जाती देख सेठ के पुत्र से न रहा गया मुकाबले पर आया। अपने रास्ते में आये इस रोड़े को हटाने के लिए चोर ने तलवार का भरपूर वार किया। सेठ-पुत्र धराशायी हो गया। चोर पकड़ लिया गया। सेठ जी ने पुत्र के हत्यारे को दण्ड दिलाने के लिए बड़ी दौड़ धूप की। उस समय के विधानानुसार हत्यारे चोर को काठ में जकड़ दिया गया।

कुछ दिनों बाद किसी अपराध में सेठ जी भी धर लिए गए और भाग्यवश वे भी उसी काठ में जकड़ दिए गए जिस में उन के पुत्र का हत्यारा फंसा हुआ था। सेठ जी को सुविधा दी गई कि उनके लिए घर से भोजन आजाया करे।

सेठानी अपने पति के लिए स्वादिष्ट एवं पौष्टिक भोजन तैयार कर के रोज भिजवा देती। हत्यारे चोर के मुंह में सेठ जी का भोजन देख कर पानी भर आता। उस ने सेठ जी से भोजन मांगा। पुत्र के हत्यारे को भला भोजन दिया जा सकता है? साफ इन्कार कर दिया गया।

सेठ जी को जब मल त्यागने की इच्छा हुई उन्हों ने चोर से कहा—"भाई उठो मुझे मलवास जाना है।"

"भोजन तुम ने किया तब तुम ने मेरा साथ नहीं चाहा तो अब मैं तुम्हारे साथ क्यों जाऊं।" चोर ने उत्तर दिया।

सेठ जी ने पहले क्रोध दर्शाया, उस से काम न चला तो विनती की पर चोर किसी तरह न माना। हार कर सेठ जी ने वायदा किया कि वे दूसरे दिनसे अपने भोजन मे से आधा पहले चोरको खिलायेंगे, फिर आप खायेंगे। चोरने शर्त स्वीकार कर ली।

दूसरे दिन से सेठ जी अपने भोजन मे से पहले आधा चोर को देते, फिर स्वय खाते।

नौकर ने यह समाचार सेठानी को जा सुनाया। क्रोध के मारे सेठानी जल उठी। उस के हृदय-पाश की हत्या करने वाले चोर को उस का पति भोजन खिलाये, यह कैसे सहन किया जा सकता है ?

वन्दी गृह मे जव सेठ जी वाहर आए क्रुद्ध सेठानी ने उन पर वाग्वाणों की झडी लगा दी। शातिपूर्वक सेठ जी वोले— "श्रीमती जी वह तो मजवूरी की वात थी, भाग्यवश मुझे उस के साथ वांव दिया गया था, जो मेरे पुत्र का हत्यारा तो था पर उस समय मेरा सह-वन्दी भी था, जिस का सहयोग मेरे लिए अत्यन्त आवश्यक था।

यह एक रूपक है। वास्तव में वह हत्यारा चोर हमारा शरीर है और सेठ है हमारी आत्मा। आत्मा को किसी अपराध का दण्ड भोगने के लिए शरीर के साथ वाध दिया गया है। हम विवश है उसे खिलाने के लिए। लेकिन क्या हमारी मूर्खता न होगी यदि हम अपने सारे प्रयत्न उस शरीर रूपी चोर को ही प्रसन्न करने में लगा दें ? उस के दास वन कर रह जायें।

विवेक कहता है, शरीर को खिलाओ ताकि आत्मा को वन्दी जीवन कुशलतापूर्वक व्यतीत करने का अवसर मिले, पर यह मत भूलो कि लक्ष्य है आत्मा को वन्धन मुक्त करना।

जो लोग लक्ष्य को भूल कर पथ भ्रष्ट हो गए, वे घृणा के नहीं, कृपा के पात्र हैं। संसार के इस उपवन मे इतने मोहक एवं

आकर्षक दृश्य है कि किसी का उस में जो आना आश्चर्यजनक नहीं है।

बेड़ियों की झंकार

कभी २ बन्धन भी प्रिय लगते हैं। परन्तु बन्धनों के प्रति आसक्ति का भाव आदमी को ले डूबता है। बन्धन जब मुक्ति के लक्ष्य का स्मरण करावें तो वे पथ खोजने के लिए रास्ता साफ कर देते हैं।

स्वतन्त्रता संग्राम का एक सैनिक कई वर्ष तक बन्दी गृह का अतिथि रहा। जब उसे रिहाई का आदेश मिला और उस के पैरों की बेड़ियां काटी गई धरती पर से बेड़ी को उठा कर उस ने चूम लिया। बेड़ी काटने वाले बन्दी ने उस की यह हरकत देखी तो हंस दिया पूछा—"जिन बेड़ियों ने तुम्हारे पैरों में घाव कर दिए हैं, उन मनहूस बेड़ियों को तुम चूमते हो, पागल तो नहीं हो गए?"

स्वतन्त्रता प्रेमी ने कहा— 'भाई! तुम नहीं जानते कितना बड़ा उपकार किया है इन बेड़ियों ने? यह तो मेरे लिए गुरु का काम कर गई।"

बन्दी की आंखों में प्रश्नवाचक चिन्ह झूल गया।

स्वतन्त्रता प्रेमी बोला——"जानते हो! इन बेड़ियों की झंकारों ने सदा मुझे मेरे लक्ष्य के प्रति जागरूक रक्खा है। मेरे हृदय में स्वतन्त्रता की अग्नि को सदा जाज्वल्यमान रक्खा और ऐसे घाव दिए हैं इन्होंने जो मुझे जीवन भर चैन से न बैठने देंगे। जब मैं अपने पैरों को देखूंगा मुझे मेरे लक्ष्य की याद आवेगी। मुझे याद आवेगी परतन्त्रता की कितने कष्ट होते हैं बन्दी जीवन में। मेरी भांति कभी कोई बन्दी गृह का मेहमान न हो मुझे ऐसा समाज लाना है।

ससार के बन्धन जो साक्षात् दुख रूप हैं, उस पक्ष की ओर इङ्गित करते हैं, जो मुक्ति का है, जो सुख का है। इन बेड़ियों की झंकार उस के कानों तक अवश्य पहुचती है, जो मोह के चक्र में विवेक को नहीं छोड़ भागता।

कमल से सीखें

कमल का जन्म जल भंडार में होता है। जल की कोख से जन्म, जल ही की गोद में पालन पोषण और जल में ही जीवन यापन, कमल का सम्पूर्ण जीवन ही जल मे व्यतीत होता है, पर क्या कभी किसी ने कमल को जल मे लिप्त देखा? कभी नहीं। एक ही रात्रि में जल वासों क्यों न बढ जाय कमल पुष्प जलस्तर से सदैव ऊपर ही रहेगा। वह कभी नहीं डूबता। जल का मोह उसे कभी बेड़ियां नहीं पहिनाता, इसी लिए वह 'सुर्खरू' होता है। क्या हम उस मौन तपस्वी से कोई शिक्षा नहीं ले सकते? कवि ने कमल के जीवन को आदर्श मान कर कहा है—

"न जग त्यागो न हर को भूल जाओ जिन्दगानी में।
रहो दुनिया में यों जैसे कमल रहता है पानी में॥"

नर से नारायण

भगवान महावीर कहते हैं—"दुलहे खलु माणुसे भवे'
"मनुष्य जन्म पाना दुर्लभ है।" भगवान इसका कारण भी बताते हैं—"समारी जीवों को चिरकाल तक इधर उधर की अन्य योनियों में भटकने के बाद जब दुष्कर्मों का भार कम होता है तब मनुष्य योनी प्राप्त होती है।"

व्यास जी महाभारत मे कहते हैं—

गुह्यं ब्रह्म तदिदं ब्रवीमि
नहि मानुषात् श्रेष्ठतर हि किंचित्।

आओ! मैं तुम्हें एक रहस्य की बात बताऊं। यह अच्छी तरह मन में दृढ़ कर लो कि संसार में मनुष्य से बढ़कर और कोई श्रेष्ठ नहीं है।

लेकिन श्रेष्ठ वस्तु को प्राप्त करना एक बात है, उसका सदुपयोग करना दूसरी बात। बन्दर के हाथ में रत्न आ जायें तो चाहे वह कितने ही मूल्यवान क्यों न हों बन्दर न उन्हें सम्भालेगा और न उन का सदुपयोग ही कर पायेगा। पर जो जानता है रत्न का मूल्य क्या वह उन से मालामाल नहीं हो जायगा?

आह! कितना भाग्यहीन है वह जो नर रत्न पा कर भी नारायण नहीं बनता।

मनुष्य जन्म की महत्ता का गुण गान करते हुए लोगों ने ग्रन्थकारों की झड़ी लगा दी है। लगभग सभी सम्प्रदायों के धर्म गुरुओं ने मनुष्य को सुपथ पर लाने के लिए प्रेरणामयी रूपक प्रस्तुत किए हैं। महाराष्ट्र के महान् सन्त तुकाराम जी तो यहां तक कह गए कि—

स्वर्गी चे अमर इच्छिताती देवा
मृत्यु लोकी व्हावा जन्म आम्हां।

स्वर्ग के देवता इच्छा करते हैं कि "हे प्रभु! हमें मृत्यु लोक में जन्म चाहिए। अर्थात् हमें मनुष्य बनने की चाह है।"

क्या देवता पृथ्वी पर भोग विलास के लिए आना चाहते हैं? क्या उन्हें मनुष्य के वैभव से ईर्ष्या हो गई है? नहीं बात ऐसी नहीं है स्वर्ग के सुख भी कर्म क्षेत्र की अपेक्षा कुछ कम नहीं हैं किन्तु मानव जीवन के धार्मिक ऐश्वर्य के सामने वे सब तुच्छ हैं। परन्तु मनुष्य रत्न पा कर जो पामर बने आ रहे हैं, ऐसी दशा के प्रति कौन ईर्ष्या करेगा? वास्तव में जिस जीवन का लक्ष्य पेट भरना और भोगों में लिप्त रहना हो वह मनुष्य जीवन ही नहीं है। पशुवत् जीवन तो साक्षात् नरक है।

लोग नर से नारायण बनने की प्रेरणा देते हैं, बड़ा लम्बा स्वप्न है। सुन्दर भी है, महान् भी। नर से नारायण बन जायें तो फिर बात ही क्या है। पर मैं आप से न नारायण बनने को कहता हूँ न देवता ही। मैं चाहता हूँ आप मनुष्य बनें। पहले 'मानव' ही बन लीजिए मानव उस देवता से कहीं महान् है; जो अपने संचित कर्मों को भोगता जाता है पर जो विश्व के लिए, मानव समाज के लिए; इस सारी सृष्टि के लिए वह नहीं कर सकता जो मानव कर सकता है।

वह एक इन्सान था

युधिष्ठिर मृत्यु के उपरान्त परलोक गए, यमदूत उन्हें लिए जा रहे थे स्वर्ग की ओर। एक स्थान पर जा कर उन्हें कुछ चीत्कार सुनाई दिए। भयंकर आवाजें आ रहीं थीं। युधिष्ठिर का हृदय द्रवित हो गया। वहीं रुक गए। पूछा—"कहां से आ रहे हैं यह चीत्कार ? कौन दुखी लोग हैं यह ?"

दूत बोले—"महाराज ! यह नारकीय जीव हैं, नरक में विभिन्न प्रकार के दुख भोग रहे हैं। कोई कढावों में भूना जा रहा है, किसी को सर्प बिच्छू काट रहे हैं। अपने पूर्व कर्मों का फल भोग रहे हैं यह।"

युधिष्ठिर के पैर मानो बन्ध गए हों। वे वहीं खडे रह गए।

दूतों ने कहा—"महाराज ! चलिए स्वर्ग आपकी प्रतीक्षा कर रहा है।"

युधिष्ठिर बोले—"नहीं मुझे यह दुखी प्राणी बुला रहे हैं। इतने लोग दुखी हों, पीड़ित हों कष्ट भोग रहे हों और मैं स्वर्ग का सुख भोगूं। मुझ से यह न हो सकेगा। मुझे नरक में ले चलो। मैं वहीं रहूंगा। यह सब चीत्कार करते लोग करुणा के पात्र हैं।"

दूतों ने विनयपूर्वक कहा—"महाराज ! आप ने तो जीवन

मर धर्म का पालन किया है। आप को स्वर्ग में जाना है आप नरक में नहीं भेजे जा सकते।"

परन्तु युधिष्ठिर न माने। वे अपनी आंखों से किसी का दुःख कैसे देख सकते थे। इन्हें बलपूर्वक ले जा नहीं सकते थे। इन्हों ने धर्मराज और देवराज इन्द्र को जा कर सूचना दी। वे स्वयं युधिष्ठिर को लेने आये।

युधिष्ठिर के वहीं रुके रहने से नारकीय जीवों के चीत्कार रुक गए थे। इन्हों ने चीत्कार रुकने का कारण पूछा तो बताया गया कि नरक के निकट उन के खड़े रहने का ही यह प्रताप है।

धर्मराज तथा देवराज ने उन से स्वर्ग चलने की प्रार्थना की, पर युधिष्ठिर बोले—"जिन पुण्यों के प्रताप से मुझे स्वर्ग मिलता है वे सभी मैं इन दुःखी आत्माओं को दान देता हूँ। मैं स्वयं नरक में ही रहूँगा मुझे स्वर्ग नहीं चाहिए।

कथाकार कहते हैं कि युधिष्ठिर के पुण्य दान से नरक वासी विमानों के द्वारा स्वर्ग जाने लगे तब धर्मराज व देवराज ने कहा—"आप की कृपा के पात्र अब स्वर्ग जा रहे हैं आप भी स्वर्ग चलें।

नहीं मैं अपने सारे पुण्य दान दे चुका। अब मैं नरक में रहूँगा, और अकेला ही रहूँगा।"

युधिष्ठिर का यह उत्तर सुन धर्मराज एवं देवराज दोनों चकित रह गए। "किं कर्तव्य विमूढ" बने खड़े थे कि धर्मराज ने कुछ सोचा और बोले—"लेकिन महाराज! आपने समस्त पुण्यों का दान करने से जो आपने महान पुण्य कमाया है, उसका सुफल तो आप भोगेंगे ही। अतः स्वर्ग चलें सारा स्वर्ग आपकी प्रतीक्षा में है।

यह था मानव हृदय वह थी मानव आत्मा यह था मानव का महानतम आदर्श। दूसरों के सुख के लिए अपने सुख का बलिदान मानवता का लक्षण है। पशु अपने लिए दूसरे पशु का भोजन छीन लेते हैं उस के लिए लड़ते झगड़ते हैं और मानव अपना मान

दूसरों के लिए छोड देता है। यही है पशु और मानव का अन्तर।

सेवा मानव का लक्ष्य

चीन का प्रसिद्ध सन्त कन्फ्यूशियस कहता है—

"अन्न का एक कण आत्मोत्सर्ग कर देता है मानव समाज के लिए। वह मिट्टी मे मिल कर फल फूल जाता है। कीडा मौन सेवक की भाति पत्ते खा कर रेशम देता है, इस अमूल्य वस्तु के बदले वह किसी से कुछ नहीं मागता। दीपक स्वय जलता है, प्रकाश देने के लिए उस के इस त्याग पर पतंगे मुग्ध हो जाते हैं। क्या तुम अन्न के एक कण, एक कीड़े और मिट्टी के दीपक से भी गए गुजरे हो? क्या तुम इन जैसे भी नहीं बन सकते? यदि नहीं, तो जाओ तुम्हें नरक बुला रहा है।"

उर्दू का एक शायर कहता है—

फ़रिश्तों से बढ कर है इन्सान बनना
मगर इस में पड़ती है मेहनत ज्यादा

हा, इन्सान बनने के लिए बहुत मेहनत करनी पडती है। क्योंकि इन्सान वह है जो इन्सानों की सेवा में शाति प्राप्त करता है।

महात्मा गाधी 'महामानव' के नाम से पुकारे गए, क्योंकि उन्हों ने जन सेवा को अपना व्रत बनाया। दुखियों के दुख दूर करने के लिए उन्हों ने प्राणों की आहुति दे दी।

एक बार उन्हों ने कहा था—

जिन्हें हम दरिद्र समझते हैं, उन्हें नारायण जानो। दरिद्र नारायण की सेवा ही भगवान की सच्ची आराधना है।" दूसरों की सेवा को अपना व्रत वही पुरुष तो बना सकता है, जो सासारिक सुखों को तुच्छ समझता है। जिसे क्षणिक आनन्द ने अपने पंजे में नहीं जकड़ लिया, जिसे त्याग में ही आनन्द मिलता है और जो समस्त प्राणियों में ही आत्म तत्त्व के दर्शन करता है।

स्वामी विवेकानन्द ने मानव सेवा में ही प्रभु सेवा का चिन्तन लेकर कहा था—

I am ready to undergo a hundred-thousand rebirths to train up a single man

एक मनुष्य के उद्धार के लिए यदि मुझे हजारों जन्म भी लेने पड़े तो मैं थकूंगा नहीं

ये शब्द मानवीय आदर्शों के अनुरूप हैं, जब तक सेवा की उतनी उत्कृष्ट भावना जागृत न होगी इन्सान इन्सान न बन पायेगा। इस भावना से समाज में फैले भ्रष्टाचार, द्वेष, दम्भ, स्वार्थपरता एवं शोषण का अन्त हो जायेगा।

एक यूरोपियन दार्शनिक अपने शिष्यों को अन्तिम संदेश देते हुए कहता है—

Serve the mankind Serve the God

(मनुष्य जाति की सेवा करो यही भगवान् की सेवा है।)

सेवा त्याग का दूसरा रूप है। सेवक को अपनी इन्द्रियों पर नियन्त्रण रखना होता है। सेवा व्रतधारी को अपरिग्रही होना पड़ता है। उसे सुख दुःख समान भाव से मानने की आदत डालनी पड़ती है। उसे स्वामी की प्रसन्नता के लिए आत्मोत्सर्ग तक के लिए तैयार रहना पड़ता है।

आओ इन्सान बनें

मैं कहता हूं न सही धर्म के सागर में डुबकी लगाने का माद्दा। ज्ञान गंगा में डुबकी लगाने की ओर आप का ध्यान न सही। यम नियमों को रट डालने की इच्छा न सही कठोर व्रतों के पालन की क्षमता न सही आप गांठ बांध लीजिए सेवा आप का धर्म है, सेवा आप का व्रत है, सेवा आप का लक्ष्य है। आप किसी भी दशा में अपने इस व्रत का त्याग नहीं करेंगे।

विश्वास रखिये आप मानव बन जायेंगे। फिर किसी दार्शनिक को भरी दुपहरिया मे दीपक ले कर इन्सान नहीं खोजना पड़ेगा। और मेरा विश्वास है कि फिर आप हत्यारे चोर को भोजन भले ही दें, उस के दास नहीं बनेंगे।

आज मानव के रूप में पशु बहुत हैं, पर जिस दिन सेवा धर्म का नारा गूञ्ज उठेगा, उस दिन यह पशु मानव बन जाग उठेंगे। उस दिन की हम प्रतीक्षा मे है।

महान् दार्शनिक बाकुनिन के यह शब्द स्मरणीय हैं—

"मनुष्य तभी मनुष्य होता है और उस की विवेक बुद्धि तभी जागृत होती है जब वह समाज मे अपने मनुष्यत्व का अनुभव करता है।"

अन्त में मैं आप लोगों से बलपूर्वक कहूँगा कि आज तक न जाने आप क्या कुछ बनने की धुन में लगे रहे है। आप जैन, सनातन, आर्य समाजी, बुद्ध तथा अन्य कितनी ही सम्प्रदायों के कट्टर अनुयायी बन चुके है, लेकिन इतना सब कुछ होने पर भी सच्चे अर्थों मे "मनुष्य" बनने की ओर आपकी प्रवृत्ति नहीं जागी है। यह है आप के जीवन के मूल मे सब से बड़ी भूल। इसी लिए आप से बार २ कहा जा रहा है कि सब से पहले आप मनुष्य बनिए, तभी आप को सची जीवन सिद्धि प्राप्त होगी।

पटियाला }
चातुर्मास } १३—७—५४

नक़द धर्म और उधार धर्म

यह बात आप ने एक बार नहीं सौ बार सुनी होगी कि युग बदलता रहता है। जगत परिवर्तनशील है। लोग जगत की परिवर्तनशीलता के लिए कई प्रकार के उदाहरण देते हैं, जैसे रात के बाद दिन आता है एक मौसम बदलता है तो दूसरा आ जाता है इसी प्रकार परिवर्तन का चक्र चलता रहता है। परिवर्तन कोई कल्पना की ही बात नहीं है, वरन् इस का प्रमाण इतिहास के पन्ने हैं।

मैं आप से पूछता हूं यह परिवर्तन आता क्यों है? यह प्रश्न बड़ा गम्भीर है। संक्षेप में इस प्रश्न का उत्तर दें तो यह कह सकते हैं कि जब लोगों की भावनाएं बदल जाती हैं उन के सोचने समझने के तरीके बदल जाते हैं उन के जीवन-यापन के साधनों और उत्पादन के तरीकों में समाज की व्यवस्था में परिवर्तन आता है, तब युग बदल जाता है। युग बदलने के लिए संसार में ऐसी आत्माएं मनुष्य रूप में उत्पन्न हो जाती हैं, जो नए विचार अथवा नए विकार समाज को देती हैं और इस प्रभावशाली ढंग पर देती हैं कि लोग उन के पीछे चलने को तैयार हो

जाते हैं। जीवन और दृष्टिकोण का तनिक सा मोड ही युग के परिवर्तन की नई राह खोल देता है।

स्वामी विवेकानन्द ने 'युग परिवर्तन' के सम्बन्ध मे कहा है–

"Customs of one age, of one yuga have not been the customs of another, and as yuga comes after they will still have to change"

"एक युग मे जो रीति रिवाज थे वे दूसरे युग मे नहीं रहे और जब भी युग के बाद युग आयेगा रीति-रिवाज बदलें गे।"

यहा शब्द रीति रिवाज का प्रयोग होने का मतलब यह कदापि नहीं है कि युग परिवर्तन से केवल रीति रिवाज ही बदलते हैं, बल्कि सोचने विचारने के तरीक़ों में, दृष्टिकोण में भी परिवर्तन होता है क्योंकि रीति रिवाज का परिवर्तन तो परिवर्तन का एक लक्षण मात्र ही होता है। परिस्थितिया बदल जाती हैं और जनता के जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मे परिवर्तन की लहर दौड जाती है। प्रत्येक युग अपने साथ अपनी विशेपताए लाता है।

महात्मा गाधी ने एक बार कहा था—

"एक युग आयेगा जब ससार भर के शस्त्रों को अजायब घरों मे सजा दिया जायेगा और दर्शक अपने पूर्वजों के इन शस्त्रों को देख कर आश्चर्य किया करेंगे कि उन्हों ने ये शस्त्र बनाने में शक्ति का अपव्यय क्यों किया। और यदि वह युग न आया तो मानव समाज नष्ट हो जाएगा।"

महात्मा गाधी की यह वाणी चाहे ससार भर मे चल रही शस्त्रास्त्रों की होड को समाप्त न कर पाई हो, पर उन्हों ने समाज मे एक विचार बीज डाला, जो अवश्य ही फूले फले गा। आज सारा संसार शस्त्रास्त्रों की दौड के विरुद्ध बोल रहा है। यह युग परिवर्तन की मौन प्रक्रिया है। जब वह युग आएगा जिस का स्वप्न महात्मा गाधी ने देखा तब क्या होगा? लोगों के विचार क्या

होंगे ? उन की धार्मिक भावनाएं किस प्रकार की होंगी ? और वह अपने जीवन की धारा किस ओर मोड़ देंगे ? ये सब प्रश्न ऐसे हैं जिन का उत्तर अनुमान के आधार पर भले ही द दिया जाए पर दृढ़तापूर्वक कोई बात कह देना असम्भव है।

राहुल सांकृत्यायन ने एक पुस्तक लिखी है जिस का नाम है 'बाईसवीं सदी'। कदाचित् वह पुस्तक उन्होंने आज से बीस वर्ष पूर्व लिखी थी। उन की पुस्तक का आरम्भ इस प्रकार होता है कि एक व्यक्ति सो कर उठता है बर्षों बाद उस की नींद टूटती है तो वह क्या देखता है कि सारा जमाना ही बदल गया है। युग ही बदल गया है और वह इस बदले हुए युग में जो देखता है उसी का वर्णन पुस्तक में किया गया है। यह उनकी कल्पना मात्र है। परन्तु ऐसे २ परिवर्तनों की उन्हों ने कल्पना की है कि आज भी उसे पढ़ कर आश्चर्य होता है। उन्होंने मानव को विज्ञान की प्रगति की चरमसीमा पर पहुँचा हुआ दिखलाया है।

जो युग बदलता रहता है और युग परिवर्तन का नियम शाश्वत मान लिया गया है, इसे सनातन मान कर ही हम भविष्य के सम्बन्ध में कल्पना करते रहते हैं। भविष्य की कल्पनाओं की बात जाने दीजिए आईये हम इस बात पर विचार करें कि युग तो बदलता ही रहता है, और युग परिवर्तन के साथ मानव के विचार भी बदलते रहते हैं ऐसी दशा में क्या धर्म की मान्यताएं भी बदल जाती हैं ?

मैं कहूँगा कि नहीं मान्यताएं अर्थात् सिद्धान्त अपने स्थान पर रहते ही हैं, पर उन को समझ में आने के लिए, लोगों को सही रास्ते पर रखने के लिए उपाय नए २ अपनाने पड़ते हैं। कौन से उपाय अपनाए जाएं, यह धर्म गुरुओं के ज्ञान और उन की समझ पर निर्भर करता है।

युग बदलने से धर्म के सम्बन्ध में लोगों के दृष्टिकोण भी

बदल जाते हैं। यही मेरी आज की बात का अन्तस्तल है। मैं आप का ध्यान अतीत की ओर खींचना चाहता हूँ।

एक समय था जब लोग धर्म की ओर भय अथवा कर्तव्य जान कर अधिक ध्यान देते थे। उस समय लोगों को यह जान लेना ही कि धार्मिक जीवन व्यतीत करने से त्याग के रास्ते पर चलने से और धर्म गुरुओं के आदेशानुसार जीवन विताने से हमे स्वर्ग मिलेगा अथवा मोक्ष मिलेगा, धर्म की ओर आकृष्ट होने के लिए काफी था। इसे मैं अपनी भाषा में उधार धर्म कहता हूँ। इस आशा से कोई धर्म कृत्य करना कि उस का फल दूसरे जन्म मे अथवा मृत्यु के उपरान्त मिलेगा, इसे आप उधार धर्म समझें। दूसरी प्रकार का धर्म है नक़द धर्म। अर्थात् जो धर्म कर्म शुद्ध अथवा शुभ कर्म आप करते हैं उस का फल भी आप को किसी रूप में तत्काल मिल जाता है, अत वह नक़द धर्म होता है। आप पूछेंगे कि किसी भी कर्म का तत्काल फल कैसे मिलता है? तो मैं आप से कहूँगा कि आप किसी भूख से तडपते व्यक्ति को भोजन दे देते हैं तो क्या उस का फल तुरन्त नहीं मिलता? भूख से तडपता व्यक्ति सन्तुष्ट हो कर आप को दुआएं देता है, आप की प्रशंसा करता है, जिसे सुन कर आप की आत्मा सन्तुष्ट हो जाती है, और सन्तोष तो सब से बडा सुख है, अत उस का फल आपको तुरन्त मिला, उस व्यक्ति का मन आप ने जीत लिया, कभी आड़े समय पर वह आप के काम भी आ ही सकता है। दूसरे आप की आत्मा पर प्रत्येक कार्य का अच्छा या बुरा प्रभाव पडता है। बिल्कुल दर्पण की ही भांति। आप दर्पण के सामने मुह कीजिए तुरन्त मुह का प्रतिबिम्ब दिखाई देगा और हाथ आगे कीजिए तो हाथ दिखाई देगा। मनुष्य की आत्मा पर प्रकृति का आवरण पडा है यदि आप शुभ कर्म करते हैं तो उस कर्म की शक्ति भर मलिनता आप की आत्मा से दूर हो जाती है और अशुभ कर्म

करें तो तुरन्त आचरणय बहरा हो जाता है। यह है धर्म का तत्काल पड़ने वाला प्रभाव और यही है नक़द धर्म।

इस प्रकार धर्म की दो किस्में हुईं—

१ नक़द धर्म
२ उधार धर्म।

परन्तु नक़द धर्म और उधार धर्म दोनों साथ ही चलते हैं। ये एक नदी के दो किनारों की भाँति ही हैं। इन दोनों का सम्बन्ध विच्छेद तो नहीं किया जा सकता परन्तु किसी एक का अधिक आकर्षण मानव को अपनी ओर खींच सकता है।

जैसे कि मैं कह रहा था कि प्रत्येक युग अपनी विशेषता अपने साथ लाता है और लोगों के सोचने विचारने के तरीके बदल जाते हैं उसी के अनुसार मैं आप से कहता हूं कि आज लोगों को पहले के अनुसार उधार धर्म इतना आकर्षित नहीं करता, जितना कि नक़द धर्म। इस के लिए मैं आप के सामने एक दो उदाहरण रखूंगा।

अधिक दिनों की बात नहीं। हमारे देश में एक विद्वान हुए हैं ईश्वर चन्द्र विद्या सागर। एक दिन ईश्वर चन्द्र रास्ते में खड़े थे। पास से एक चिन्तित व्यक्ति निकला। वह बड़बड़ाता जाता था—"हाय! कर्ज़ भी नहीं चुकाया जा सका उलटा मुक़दमा गले पड़ गया। अब मुक़दमा लड़ने को रुपया कहां से आवे। कर्ज़ और मुक़दमा। करूं तो क्या?"

विद्या सागर ने उसे रोक कर पूछा— "क्यों भाई क्या तुम मुझे बता सकते हो कि तुम किस चिन्ता से पीड़ित हो?"

दुखित हो कर चिन्तित व्यक्ति बोला—"क्या पूछते हो श्रीमान् जी! मुसीबत का मारा हूँ।

विद्या सागर ने ज़ोर दे कर पूछा—"कुछ बताईये तो ऐसी मुसीबत है किस से आप इतने परेशान और उदास हैं?"

वह व्यक्ति विद्या सागर के साधारण वस्त्रों को देखकर सोचने लगा कि यह व्यक्ति मुझे क्या सहायता दे सकता है यह तो स्वय ही गरीब दिखाई देता है। यह सोचकर उस ने कहा—"आप मेरी मुसीबत सुन कर क्या कीजिएगा ?"

विद्या सागर कहने लगे—"भाई कुछ बताओ तो सही, अपनी व्यथा दूसरे को बता देने से जी तो हल्का हो ही जाता है।"

उस व्यक्ति ने कहा—"भाई क्या पूछते हो निर्धन ब्राह्मण हूँ, कन्या के विवाह मे ऋण ले लिया था, जिसे अब तक अदा नहीं कर पाया।"

ईश्वर चन्द्र विद्या सागर बोले—"तो क्या ऋण के लिए चिन्तित हो ?"

उसने ठण्डी सास ले कर कहा—"नहीं जी। अब तो मुक़द्दमे की चिन्ता है साहूकार ने मुक़द्दमा चला दिया है।

ईश्वर चन्द्र ने उस मुक़द्दमे की तारीख और न्यायालय का पता मालूम कर लिया। जब वह व्यक्ति तारीख पर अदालत मे गया तो उसे यह जानकर बहुत आश्चर्य हुआ कि किसी ने उस का ऋण अदा कर दिया है, और उस के कारण मुक़द्दमा भी समाप्त हो गया है। निर्धन ब्राह्मण समझ न पाया कि ऋण चुका देने वाला वही व्यक्ति है जो उस दिन रोक कर उस की व्यथा सुन रहा था, और उसे अपने जैसा निर्धन दीख रहा था। वह यही सोचता हुआ घर चला गया कि वह कौन दयावान है जिस ने आड़े समय पर बिना सूचना दिए ही मेरी सहायता की। वह अनुमान न लगा सका।

ईश्वर चन्द्र विद्यासागर ने यह जो कुछ किया, मैं समझता हूँ उसके पीछे ऐसा पुण्य कमाने की भावना अवश्य ही रही होगी जोकि परलोक सुधारने में काम आए। यह उन के उधार-धर्म के प्रति आकर्षण का प्रमाण है। पर क्या आज भी कोई ऐसा व्यक्ति आप

की दृष्टि में है जो किसी की गुप्त रूप से सहायता करे और फिर उस पर अहसान न जमाए सम्भव है अपवाद रूप में ऐसा कोई व्यक्ति आज हो किन्तु प्राय देखने में ऐसे ही लोग आते हैं जिन के सम्बन्ध में यह कहा गया है—

अहरन की चोरी करी किया सुई का दान।
कोठे चढ़ के देखते कब आए स्वर्ग विमान॥

मनों लोहा चुरा कर सुई का दान कर देते हैं और फिर आशा करते हैं कि दान के पुण्य से स्वर्ग का विमान उन के लिए तैयार ही है।

अतीत काल के इतिहास के पन्ने उलटिए आप को एक नहीं सैकड़ों ऐसे उदाहरण मिलेंगे कि लोगों ने सबल दूसरों के दुख के लिए दे दिया अपने आप संकटों में जीवन व्यतीत किया कभी नाम अथवा प्रतिष्ठा की भूख ने उन्हें नहीं सताया केवल एक ही उद्देश्य उनके सामने रहा कि जीवन मरण के बन्धनों से मुक्त हो जायें परन्तु आज बड़े २ सेठ लोग यदि मन्दिर बनवाते हैं तो इस लिए कि लोग जानें सेठ जी बड़े दानी हैं। सेठ जी स्वयं मन्दिर में जावेंगे भी नहीं वे तो धन के साथ २ यश, प्रतिष्ठा पाने के भूखे होते हैं।

नकद धर्म लोगों को अपनी ओर आकर्षित करता है, जब मैं यह कहता हूँ तो मेरा मतलब धर्म के उन सिद्धांतों से होता है जिन का पालन करने से मनुष्य को तुरन्त उस का फल किसी न किसी रूप में मिल जाता है। धर्म ग्रन्थ कहते हैं दान दो। कुछ लोग दान करते हैं और वह उस के द्वारा इसी जीवन में सुख भी पा ही लेते हैं नाम कमाते हैं और लोगों से प्रेम व आदर पाते हैं। धर्म ग्रंथ कहते हैं दुखी और सताए हुए लोगों की सहायता करो लोग ऐसा कर देते हैं और लोगों से आदर पाते हैं। धार्मिक ग्रन्थों का कथन है सादा जीवन रक्खो। लोग विपुल सम्पत्ति के स्वामी हो कर भी यदि सादा जीवन व्यतीत करते हैं तो उन्हें

जनता की ओर से सत्कार मिलता है। नकद धर्म के ये सब उदाहरण किसी न किसी रूप में उधार धर्म के साथ सम्बन्धित होने के कारण शायद आपको ठीक तरह से समझ मे न आ पाये हों। मैं स्पष्ट बता देना चाहता हूँ कि नक़द धर्म का उद्देश्य है हमारे वर्तमान जीवन की शुद्धि, इस बात को आप ऐसे भी समझ सकते हैं कि जिस कर्म अथवा कर्तव्य के करने से हमारा यह जीवन पवित्र हो वही नक़द धर्म है। जीवन की वर्तमान पवित्रता से बढ़ कर और नक़द धर्म हो भी क्या सकता है।

यह नक़द धर्म ही था जिस ने अर्जुन माली जैसे अत्याचारी को कुछ ही क्षणों मे धर्मात्मा बना डाला। इस धार्मिकता ने अर्जुन माली के जीवन को असंख्य प्राणियों के लिए आदर्श बना दिया।

आज के लोगों का विश्वास है कि स्वर्ग की बात बहुत दूर की है उन्हें ऐसे उपाय चाहिए जिन के द्वारा इसी जीवन मे स्वर्ग का सुख प्राप्त हो जाए। अत वे सब सिद्धात लोगों को पसन्द आते हैं जो उन के शुभ कर्म का तत्काल सुफल दे देते हैं। यह बात दूसरी है कि नक़द धर्म के आकर्षण में लोग जो करते हैं उस से परलोक भी सुधरता ही है, उधार धर्म भी होता रहता है। 'इस हाथ ले उस हाथ दे' का सिद्धात लोगों में प्रिय है। यह है इस युग की विशेषता। बीते हुए युग में उधार धर्म के आकर्षण में नक़द धर्म भी चलता था

आप में से अधिक लोग किसी न किसी व्यापार मे लगे हैं। अतएव जानते ही होंगे कि व्यापार मे साख चलती है। लोग हज़ारों रुपये का माल उधार ले लेते हैं, उन्हें उधार मिल भी जाता है और वे उधार ले कर सैकड़ों रुपये लाभ कमा कर रुपया अदा कर देते हैं। ऐसा करने वालों की साख तो होती ही है साथ ही यह भी विश्वास होता है कि वे इतनी हैसियत के आदमी हैं कि रुपया मारा नहीं जा सकता। इस प्रकार नक़द हैसियत के आधार पर ही उधार चल जाता है। यही बात धर्म के मामले में है। नक़द

धर्म ही उधार धर्म का आधार होता है। उधार धर्म के साथ
नकद धर्म चलता रहता है और नकद के साथ २ उधार धर्म।

वर्तमान युग में नकद धर्म के प्रति आकर्षण बनाए रख
लिए भी बड़े प्रयत्न की आवश्यकता है। क्या ही अच्छा हो कि
एक बात याद रखें वह यह कि अपनी साख बनाना बहुत आ
है। आदमी की साख उसे डूबने नहीं देती। नकद धर्म के
अपनी साख को बनाए रखो। फिर आशा की जा सकती
उधार धर्म भी आप को अपनी ओर आकर्षित करेगा।

अपने वर्तमान की भूलों को सुधारिए। दुर्भावनाओं
विजय प्राप्त करिए। इसी में नकद धर्म की वास्तविकता सिद्धि
वर्तमान का सदाचरण ही भविष्य के जीवन का निर्माण
है। नकद धर्म की साख पर ही उधार धर्म का सुख मिले

पटियाला }
चातुर्मास }

आप सब भीख मांगते हैं !

आजकल एक बात की बहुत चर्चा है कि भिखारी देश की छाती पर लदे हुए कुछ ठलोरे हैं। एक दिन था लोग अपने द्वार से किसी को खाली हाथ वापिस नहीं जाने देते थे। और आज लोग भिखारी को देख कर नाक भौं सिकोड़ लेते हैं। बात ठीक है लोग अपनी कमाई में से धेला पैसा किसी भिखमंगे को दें तो क्यों? भिखारी भी क्यों नहीं इन्हीं की भांति मरखप कर कमाता। भला भिखारी इन्हें देता क्या है जिस का बदला वह भीख दे कर अदा करें। आज तो जमाना ऐसा आ गया है कि खाली बैठे बेटे को भी लोग भार समझने लगते हैं। वह तो अपना खून है, जब उसे ही वे नहीं खिला सकते तो किसी गैर को अपनी कमाई क्या दें ? आखिर कोई देने पर कमर बांध ले तो प्रात से रात हो जाये, पर मांगने वालों से पीछा न छूटे। लाखों भिखारी हैं देश में और अब तो भीख मांगना पेशा हो गया है। अलख जगाई और पैसा मांग लिया। सुबह से शाम तक दो तीन रुपये मांगे और शाम को ठाठ से सुलफा चढ़ाया। यह है भिखारियों की दशा, फिर देश इनके पेट को कहां से लाए, कहां से लाए इनके सुलफे

के लिए? यह हैं वे तर्क जो भिखमंगी के विरुद्ध दिये जाते हैं। आप भी इन तर्कों के पक्षपाती होंगे। परन्तु मैं आप से एक बात पूछना चाहता हूँ सच २ बताईये कि क्या भीख माँगना वास्तव में बुरा है?

आप भी भीख माँगने के विरोधी हैं, हैं ना! बात ठीक है क्या ही अच्छा हो लोग भीख माँगना छोड़ दें और सब कमाने लगें अब अपने पौरुष पर विश्वास करने लगें। परन्तु एक बात बताईये हाथ पसारना तो बुरा है ना। मर्द हो कर किसी के सामने हाथ पसारें। बुरी बात है। किन्तु वे लोग जो भगवान् के सामने देवी देवता के सामने हाथ पसारते हैं, उन के बारे में आप का क्या विचार है? याचना तो वे भी करते हैं। माँगते तो वे भी हैं। गिड़गिड़ा कर माँगते हैं, रो कर माँगते हैं सिर झुका कर माँगते हैं गा कर माँगते हैं घण्टा बजा कर माँगते हैं। मतलब यह कि दाता को रिझाने के लिए सभी प्रकार के उपाय करते हैं। भीख माँगना बुरा है यह बात मान ली तब भीख चाहे किसी से क्यों न माँगी जाये हाथ किसी के सामने क्यों न पसारा जाए, बुरा हुआ ना! अब आप इस प्रश्न पर मौन क्यों हो? एक व्यक्ति यदि मनुष्य के सामने हाथ पसारता है तो वह बुरा करता है भगवान के सामने हाथ पसारता है तो अच्छा करता है ऐसा क्यों? क्या केवल इस लिए कि भगवान सब को देने वाला है उस से माँगना बुरा नहीं। यहाँ आप का पहला तर्क तो जाता है। मैं समझता हूँ जब आप भिखमंगी का विरोध करते हैं तो आप हाथ पसारने की प्रवृत्ति के विरोधी होते हैं। तब आप को भगवान के सामने भी हाथ नहीं फैलाना चाहिए।

आप कहेंगे महाराज आज कैसी बातें कर रहे हैं! कुछ अटपटी सी है। आप में से अधिक लोग यहाँ ऐसे हैं जो भगवान को कर्ता नहीं मानते आप के शास्त्र कहते हैं भगवान न किसी

सुख देता है न दुःख। फिर भी आप सभी भगवान से सुख पाने की कामना रखते हैं। भगवान् के सामने हाथ पसारने के पक्षपाती हैं। वही बात हुई न कि जज के सामने हत्या के जो भी केस आए, उस ने आदेश दिया, इसे फांसी पर लटका दो। एक दिन उस का लड़का हत्या के अभियोग में दण्ड पाने पहुँच गया तो जज कहने लगता है फांसी देने से क्या लाभ? मृत व्यक्ति वापिस तो आ नहीं जाता। सरकार का क़ानून ग़लत है। दूसरों को फांसी देने के समय तो जज को क़ानून की खामी नज़र आई नहीं, जब अपने बेटे की गरदन पर आ बनी तो आदर्श सूझा।

दूसरे भीख मांगते हैं उन से जो कमाते हैं, जिन के पास कुछ देने को होता है। कभी आप ने ऐसा भी देखा कि कोई भिखारी दूसरे भिखारी से कुछ मांगता हो? नहीं, क्योंकि वह जानता है कि वह क्या देगा जो स्वयं हाथ पसारता है। तो जिस के पास देने को होता है उसी से मांगा भी जाता है। और आप भी भगवान् के आगे हाथ पसारते हैं यह सोच कर कि वह चाहे तो दे सकता है, क्योंकि वह देने वाला है। फिर यदि कोई व्यक्ति जिस के पास कुछ नहीं है, उस से कुछ मांगता है जिस के पास कुछ है तो, उसी कुछ का कुछ अंश वह चाहता है, मकान, दुकान, आभूषण सन्तान, मेज कुर्सी आदि तो नहीं मांगता पैसे मांगता है और साथ में कहता भी है—"बाबा एक पैसा दो। दो पैसे का पान चबा कर थूक देते हो, एक पैसे की सिग्रेट का धुआं उड़ा कर फूक देते हो। एक पैसा ग़रीब लाचार को दे दो, भला होगा। भगवान् तुम्हें बहुत कुछ देगा।" आप उसे फटकार देते हैं। क्योंकि उस ने आप की कमाई में कोई योग नहीं दिया फिर कमाई का अंश मांगने का अधिकार कैसा?

अब मैं आप से कहता हूँ तनिक सोचिए आप जब भगवान् के सामने हाथ पसारते हैं, भगवान् कहता है, मेरी कमाई में

तुम्हारा क्या भाग ? हाँ कहे हो कर्म सच्चे हों जो करते हो उस का फल तुम्हें मिलता है फिर भीख कैसी ? यह निर्लज्ज हो, माँगते लज्जा नहीं आती ? बोलो भगवान यह कहे तो कैसा लगे ?

एक ओर आप कहते हैं भगवान के दरबार में देर है अंधेर नहीं। जैसा करोगे वैसा पाओगे। आप का यह विश्वास ही आपके हाथ पसारने को अनुचित प्रमाणित करता है। जब कर्म का फल मिलना ही है तो भीख कैसी? या तो आप यह मानिए कि भगवान् के दरबार में देर तो है हाँ अन्धेर भी है। क्या पता हम काम भी करते रहें और उस का फल हमें भी भगवान भूल जाए, अतएव अन्धेर राज्य में हाथ पसार कर ही अपनी कमाई मांगें अथवा यह मान लीजिए कि आप अपनी कमाई से अधिक चाहते हैं। काम धेला भर करें फल पायें रुपया भर। मैं समझता हूँ यदि भगवान जिसे चाहे जो दे दे ऐसी शक्ति रखता भी है तो वह ऐसा अन्धा व्यापार नहीं करता होगा।

मैं प्रायः सोचा करता हूँ कि भगवान के भक्तों के विचारों में कितनी असंगतियां हैं बिलकुल अनियमित और न हिसाब मामला चलता है। कहेंगे यह कि भगवान निराकार है सर्वशक्तिमान है सर्वज्ञ है उसकी आज्ञा बिना पत्ता भी नहीं हिल सकता वह सब कुछ देखता है। पर जब भक्ति करने बैठेंगे तो इस इच्छा से कि भगवान प्रसन्न हो जायेंगे तो मन-इच्छित फल हमें मिल जायेगा। घर में सन्तान नहीं होती करो भगवान् की पूजा। मुकदमा लगा है जीत जाने की इच्छा है करो भगवान् का कीर्तन। आर्थिक संकट है दौलत चाहिए करो भगवान् की प्रार्थना। भगवान् सर्वज्ञ है तो क्या आप की भावना को नहीं समझता। आप के स्वामी हृदय को वह पहचानता है तो फिर आप का इच्छित पदार्थ आपको क्यों मिलने वाला है ?

मैं आप से पूछता हूँ। कोई व्यक्ति आप के पास आप आप

की बहुत प्रशंसा करने लगे। कहने लगे—"लाला जी! आप बड़े दयालु हैं आप दीन दुखियों की बड़ी सहायता करते हैं। आप दूसरों को दुखी देख कर स्वयं दुखी हो जाते हैं। आप बड़े दानवीर हैं। आप बड़े यशस्वी हैं।" अधिक प्रशंसा के ये वाक्य सुन कर आप सोचने लगेंगे—"क्या बात है यह आदमी बड़ी प्रशंसा कर रहा?" और उसी समय आप को पता चल जाए कि वह आप की प्रशंसा अपने स्वार्थवश कर रहा है आप से एक रुपया चाहता है। तो चाहे आप कितने ही दानवीर क्यों न हों आप सोचेंगे बड़ा मक्कार आदमी है अपनी गरज पड़ी है तो प्रशंसा के पुल बांधने चला है आप उसे एक पाई न देंगे। फिर भगवान् से क्यों आशा करते हैं कि वह आप के फुसलाए मे आ जाएगा।

एक बार खलील जिब्रान ने अपने शिष्यों से कहा था—

"तुम यह विश्वास कभी मत करना कि भगवान जो चाहे दे सकता है। जिस राज्य का राज्याधीश स्वेच्छाचारी हो जाता है वह नष्ट हो जाता है। भगवान् सर्वशक्तिमान है तो वह खुशामद का भी भूखा नहीं है और अन्धा व बहरा भी नहीं, विश्व का चक्र किन्हीं नियमों पर चलता है।"

खलील जिब्रान की बात मे कुछ वजन आप को लगता है या नहीं?

मुझे तो यह बात सोलहों आना ठीक जचती है। पर आपको ठीक लगती हो तो मैं नहीं समझता कि फिर आप कैसे भगवान् से कुछ मांगने लगते हैं?

मैं आप के हृदय को ठेस नहीं पहुँचाना चाहता पर आप को व्यर्थ में परेशान फिरते भी नहीं देख सकता। मैं चाहता हूँ कि आप अपने बाहुबल पर, अपने परिश्रम पर और अपने शुभ कर्म पर विश्वास करें।

कबीर दास की कथा आप ने सुनी होगी। वैष्णवों के ग्रन्थों

में उन के जीवन की एक कथा आई है। एक बार भगवान् उन से बहुत प्रसन्न हुए और अपने सच्चे स्वरूप का प्रगट कर के उन्हों ने कहा—"कबीर हम तुम से बहुत प्रसन्न हैं। तुम बड़े सच्चे भक्त हो जो चाहो मांग लो।"

सन्त कबीर ने कहा—"महाराज! मुझे कुछ नहीं चाहिए। आप प्रसन्न हैं तो बस मुझे आप का दिया सब कुछ मिल गया। भगवान् की जिस पर कृपा हो उसे और क्या चाहिए?"

सन्त कबीर बहुत ही गरीब व्यक्ति थे। सूखी रोटी भी उन्हें मुश्किल से नसीब होती थी। भगवान् ने पुनः ज़ोर दे कर कहा—"कबीर मांग ले जो कुछ मांगना है। जो मांगे वही मिलेगा।"

बहुत ज़ोर दे कर जब भगवान् ने कहा तो कबीर ने सोचा भगवान् कुछ देना ही चाहते हैं तो इन्हें अप्रसन्न क्यों करते हो, कुछ मांग ही लो।

जानते हो उस ने क्या मांगा? उस ने धन नहीं मांगा उस ने राज्य नहीं मांगा और न उस ने महल दुमहले मांगे उस ने हाथ जोड़ कर कहा—"महाराज! देना है तो सारी दुनिया की गरीबी मुझे दे दो।"

भगवान् उस की इस मांग को सुन कर आश्चर्य चकित रह जाते हैं।

यह सन्त कबीर जो भगवान् को कर्त्ता मानते थे, भूखे नंगे रहने के पश्चात् भी धन धान्य नहीं मांगते। मांगते हैं तो निर्धनता। और आप क्या मांगते हैं? आप मांगते हैं पैसा व्यापार में लाभ सन्तान पद, मुकद्दमे में जीत। जीव भगवान् से मांगते हैं जो आप को प्रिय है। और अपनी मांगें पूरी कराने के लिए आप प्रभु की प्रार्थना करते हैं, कीर्तन करते हैं। ढोल मंजीरे बजा बजा कर भगवान् की प्रशंसा करते हैं। परन्तु स्वार्थ का लिया नाम भी पुण्य नहीं कमाता। आप का भी चाहे

को भगवान का पूजन कीजिए चाहे न कीजिए। भगवान आप के पूजन का भूखा नहीं है।

मेरी समझ में नहीं आता कि लोग भगवान को घूस देने का प्रयत्न क्यों करते हैं। भगवान किसी इन्कम टैक्स ऑफिस का क्लर्क नहीं है, जो घूस से मान जाए। यदि आप भगवान को कभी भी मानें तो भी वह झूठी प्रशंसा से प्रसन्न हो कर आप को माला माल नहीं कर देगा, क्योंकि वह आप की नीयत जानता है। मुझे आजकल की भक्ति पर एक दृष्टान्त याद आ गया। देखिए यह है आज के भक्तों की दशा।

एक व्यक्ति अपने पुत्र को प्रतिदिन शिक्षा देता था कि बेटे ? भगवान् का भजन किया करो। उस के पुत्र की समझ में यह बात कदापि न आई कि भजन क्यों करें ? उस ने एक दिन पूछ ही तो लिया—"पिता जी। रोज़ ही एक ही बात रटते हो भगवान् का भजन किया करो, भगवान् का भजन किया करो। वह अपना लगता क्या है ? भैंस की सेवा करता हूँ तो वह दूध देती है। बैलों को खिलाता पिलाता हूँ तो वे खेत जोतते हैं, भगवान् दूध देगा या हल जोतेगा ?"

पिता ने बेटे को समझाते हुए कहा—"मूर्ख ! भगवान् सबका स्वामी है, उस ने हमें पैदा किया, हमें इतना बड़ा किया और खाने पीने को भी तो वही देता है। जो भगवान् का भजन करते हैं उन्हें भगवान् सब कुछ देता है।"

पुत्र ने कहा—"पिता जी ! भैंस को घास मैं खिलाता हूँ, भैंस उस के बदले दूध देती है। मैं हल जोतता हूँ तो अन्न पैदा होता है। मैंने ऐसे तो किसी आदमी को देखा नहीं जो बिना कमाए ही हमारे घर कुछ डाल जाता हो।"

पिता बेचारा अनपढ आदमी था, पुत्र के प्रश्न को सुन कर बड़ा चिन्तित हुआ। सोचने लगा इस मूर्ख को कैसे समझाऊं ?

आखिर उसे एक तरकीब सूझी उसने कहा- "अरे तू इतना बड़ा हो गया क्या विवाह नहीं करामा ? विवाह करता है तो कर भगवान का भजन।"

अब तो पुत्र की समझ में बात आगई वह रोज मन्दिर जाता और घण्टों पूजा पाठ करके कहता—"भगवान मुझे तो सुघड़ पत्नी चाहिए। बस जल्दी से मेरा विवाह करा दो।"

कितने ही दिन तक वह पूजा करता रहा, पर विवाह तो दूर की बात कोई उसे देखन तक नहीं आया सगाई तक न हुई। आखिर एक दिन तंग आकर उस न सोच लिया कि आज हिसाब साफ ही करना है। मामला इधर या उधर। वह डण्डा ले कर मन्दिर पहुँचा और लाठी तान कर बोला—"जो भगवान सीधी सीधी बात करो। जितनी देर तुम्हारी पूजा करता हूँ उतनी देर कोई खेत जातता तो इतम दिनों में एक फ़सल आ जाती। और तुम हो कि बैठे रहते हो बुत की तरह। मैं कहता हूँ मुझे एक अच्छी सी पत्नी दे दो पर तुम तो हुंकारते ही नहीं। बात तू नहीं बनगी आज तो तुम नहीं या मैं नहीं। पत्नी देनी है तो आज दो।"

डण्डा ले कर वह मन्दिर के दरवाजे पर बैठ गया और अन्तिम चेतावनी दी कि एक घण्टे में मुझे पत्नी दरवाजे में मिल जानी चाहिए, वरना हाथ में मेरे भी डण्डा है।

बहुत देर तक प्रतीक्षा करता रहा। बड़े धीर से मूर्ति की ओर देखता रहा। मूर्ति पर चढ़े खील बताशों के मोह में एक चुहिया आई और ज्यों ही वह चढ़ावा खा कर बाहर को निकली लड़के ने उसे दबोच लिया वह समझा कि भगवान् न पत्नी भेजी है। खड़ा हो कर बोला— "वाह भगवान् वाह वो गज का आदमी और बीबी एक इञ्च की।"

मन्दिर का पुजारी वह दख बोला—"अरे और क्या आठ हाथ की लेगा। प्रसाद तो चढ़ाता है तोला भर। तोले भर प्रसाद

मे छटाक भर की तो मिल गई और क्या मन भर की लेगा ?"

यह है भगवान् के भक्तों का हाल और पुजारियों की भावना। ऐसे भक्तों पर भगवान् प्रसन्न होगा ? भगवान् तो भगवान् कोई समझदार व्यक्ति भी अपने ऐसे प्रशंसकों को पसन्द नहीं करेगा।

महात्मा गाधी भी भगवान् के भक्त थे, उन्हों ने बार बार कहा है—

"हे राम ! मुझे शक्ति दो कि मैं सत्य और अहिंसा से कभी विचलित न होऊं।"

उन्हों ने कभी भगवान् से पद नहीं मागा दौलत नहीं मांगी। उन्हों ने मागा तो आत्मबल ताकि वह अपने धर्म पर अडिग रह सकें।

कुछ लोग प्रतिदिन मन्दिर जाते हैं। माला फेरते हैं। पर उन का हाथ होता है माला के दानों पर और मस्तिष्क या मन होता है रोजगार मे दुकान पर अथवा घर मे। क्या भला होगा ऐसे पुजारियों का ? एक बात प्राय मेरे मन मे उठा करती है। लोग भगवान् से कुछ न कुछ मागते हैं। पर भलेमानसों को मागना भी नहीं आता। मांगने चलेंगे तो क्या मागेंगे ? लक्ष्मी। भगवान् विष्णु की पूजा करेंगे और मांगेंगे लक्ष्मी। मैं पूछता हूँ आप लोगों ने कभी अपनी इस नादानी पर विचार किया है? आप जानते होंगे लक्ष्मी भगवान विष्णु की पत्नी है। आप किसी से उस की पत्नी मागें, तो बोलिये आप को क्या वह अपनी पत्नी दे देगा ? नहीं, कदापि नहीं देगा। यह तो एक साधारण सी बात है। कोई व्यक्ति आप की बहुत सेवा करे, इतनी कि आप उससे बहुत प्रसन्न हो जाएं और प्रसन्न हो कर कहें कि हम तुम्हारी सेवा से बहुत प्रसन्न हुए। अब बोलो क्या चाहते हो? जो मागोगे हम वही देंगे। और वह व्यक्ति यह देखे कि स्वामी तो बहुत प्रसन्न हैं ही, इनसे नालायक ही क्यों न मांग लो उसके मुख से उस की मांग सुनते ही

भाग बबूला हो जायेंगी आप और वह चाहे आप का प्रिय। प्रिय सेवक क्यों न हो आप उसकी निसर्जता का दण्ड देने के लिये आतुर हो उठेंगे। क्या इस में किसी को सन्देह हो सकता है? यह तो यथार्थ सत्य है। फिर आप बताईये भगवान् की अर्धांगिनि लक्ष्मी आप को मिले तो कैसे ?

दीपावली का त्योहार प्रतिवर्ष मनाया जाता है। आप सब लोग जानते ही हैं कि उस दिन दुकान और मकान में लक्ष्मी का पूजन होता है। स्थान २ पर लिख दिया जाता है "लक्ष्मी जी सहाय और "शुभ लाभ"। लोग अपनी फर्मों की ओर से दीपावली का शुभ सन्देश छपवा कर भिजवाते हैं। किसी पर लिखा होता है—

चांदी के हों दिन हमारे
सोने की हो रात
सज धज कर के घर में आए
लक्ष्मी की बारात

जहां तक मेरा विचार है, जितने जोर शोर से लक्ष्मी की पूजा होती है उतने ठाठ बाठ से कदाचित ही किसी और की पूजा होती हो। लक्ष्मी जी की मूर्ति विकारी नहीं लाते आभूषण आदि सभी तो हम नित्य पूजते हैं। मैं पूछता हूं घर की लक्ष्मी पत्नी को तो आप समझते हैं पैर की जूती। नारी जाति को अनादर की दृष्टि से देखते हैं और दूसरी ओर भगवान् की पत्नी की इतनी पूजा। पुरुष हो कर नारी की दासता के आप भूखे बनते हैं! आप सोचिये नारी मूर्ति की इतनी पूजा और फिर उसे लक्ष्मी के लिए आप क्या कुछ नहीं करते। बाप बेटे से लड़ेगा भाई से भाई लड़ेगा। सास बहू से झगड़ेगी बेटे बाप का निरादर करेगा। एक एक पैसे के लिए बेईमानी चोरी, कपट छल और झूठ का प्रयोग किया जाता है। लक्ष्मी की इतनी दासता ?

लाला जी दुकान पर बैठे हैं, एक ग्राहक आ जाता है, पूछता है मिर्च क्या भाव दी हैं ? लाला जी कहते हैं आप को चार छटाक के भाव से मिल जायेंगी। जैसे कि लाला जी तरस खाकर उसे कुछ अधिक मिर्चें दे रहे हों। ग्राहक कहता है, लाला जी दूसरी दुकानों पर तो सवा चार छटाक के भाव से मिल रही हैं। अब लाला जी झट से भगवान् का सहारा लेंगे। कहेंगे—"भगवान् क़सम सवा चार छटाक की तो हमारी खरीद है। फिर लाने का खर्चा, सेल्स टैक्स, चुङ्गी यह भी तो देना ही पडता है।

मतलब यह कि एक २ पैसे के लिए भगवान् की झूठी क़सम खाने से नहीं चूकते। लक्ष्मी के लिए भगवान् की सौगंध खाते हैं अर्थात् भगवान की पत्नी भगवान् से अधिक आदर पाती है।

एक बात मैं आप से कहता हूँ, मान लीजिए गुरु शिष्यों के व्यवहार मे बहुत प्रसन्न हो जाये और वह शिष्यों से कहे—"मैं तुम्हें पुरस्कार देना चाहता हूँ। बोलो कौन सी वस्तु तुम पुरस्कार स्वरूप लेना पसन्द करोगे ?"

शिष्य बहुत सोच समझ कर कहें—"गुरुदेव हमे ताश दे दीजिए।" क्या गुरु उन की इस मांग को स्वीकार करेगा ? कभी नहीं। वह जानता है कि ताश ले कर छात्र लिखना पढना भूल खेल में लग जायेंगे। वह चाहे कितना ही प्रसन्न क्यों न हो, ऐसी वस्तु कदापि न देगा जो शिष्यों को बिगाड़े।

धन के बारे मे भी धर्म गुरुओं का यही कथन है कि वह मनुष्य को पथ भ्रष्ट कर देता है। महा पुरुष कहते हैं कि लक्ष्मी घर मे हो और आदमी उस की आसक्ति में भगवान् तथा जगत सभी को न भूल जाये, यह सम्भव होते हुए भी दुर्लभ है। कहा है—

"अहो धनमदान्धस्तु पश्यन्नपि न पश्यति"

'अहो! धन के मद से अन्धा व्यक्ति देखते हुए भी नहीं देखता।' किन्तु आप उसी वस्तु को मांगते हैं जो मनुष्य की आंखें

रहते हुए भी अन्धा बना देती है। आप ही सोचिए कि आप भगवान से लक्ष्मी मांगते हैं तो क्या अपने ही लिए माया-जाल नहीं मांगते ? जो कि आपको संसार के मोह में अन्धा बना देती है।

कैसी आश्चर्यजनक बात है कि आप अविनाशी प्रभु से नाशवान वस्तुएँ मांगते हैं। धन दौलत तो नाश है, कल समाप्त हो जाएगी, इन का क्या ठिकाना फिर अविनाशी से नाशवान वस्तु मांगना कहां की बुद्धिमत्ता है। भगवान् भी जानता है कि भक्त नाशवान वस्तु मांगता है मिल जाएगी तो बौरा जाएगा यह जीवन विषयों में ही व्यतीत कर देगा। अतः आप मांगते हैं और आप की मांग पूरी नहीं होती। यह है आप की प्रार्थना का कोई परिणाम न मिल पाने का रहस्य।

"दुविधा में दोनों गए माया मिली न राम"

मुझे उन लोगों की बुद्धि पर तरस आता है जो लक्ष्मी की पूजा कर के उस से वर मांगते हैं— 'हे लक्ष्मी ! हमें अपनी सेवा का अवसर प्रदान करो।" अर्थात हमें अपना दास बना लो। क्या संसार में ऐसी भी प्रार्थना है ? लोग तो दासता से मुक्ति पाने के लिए आन्दोलन करते हैं, शताब्दियों तक संघर्ष करते हैं, बलिदान देते हैं और मुक्ति के लिए, स्वतन्त्रता के लिए सर्वस्व स्वाहा कर देने को तैयार रहते हैं और आप हैं कि दासता का वरदान मांगते हैं। धन्य है आपकी बुद्धि !

किसान अपने खेत में बीज डालता है किस इच्छा से? फसल की कामना से। गेहूँ बोता है, गेहूँ की इच्छा से। परन्तु जब गेहूँ की फसल आती है तो गेहूँ के साथ साथ भूसा भी मिल जाता है। उसे भूसा फोकट में मिल गया। पर आप हैं कि मांगते हैं भूसा गेहूँ नहीं। यदि आप गेहूँ की इच्छा करें तो भूसा उस के साथ ही प्राप्त हो जायेगा। आप भगवान् को मांगें तो एक बात भी है, लक्ष्मी स्वयमेव उस के पीछे चली आयेगी।

करोड़-पति का बेटा यदि रोटी मांगने निकले तो लोग क्या कहेंगे? उस की खिल्ली उड़ायेंगे, ताने मारेंगे। इस लिए कोई करोड़-पति का पुत्र आप ने ऐसा करते न देखा होगा और यदि ऐसा कभी हुआ भी हो तो लोग उस पुत्र को पागल कहते होंगे। आप भगवान के पुत्र हैं। आप भगवान को कहते तो हैं—

"त्वमेव माताच पिता त्वमेव"

"तुम ही मा हो और तुम ही पिता हो।"

'हे परम पिता परमात्मा' का उच्चारण कौन नहीं करता। और उसे सर्वशक्तिमान, जगत का स्वामी कहते हैं। फिर आप इतनी महान् शक्ति की सन्तान हो कर रोटी, रोजगार, धन जैसी नाशवान वस्तुएं उस से मागते हैं। वास्तव में यह आप को शोभा नहीं देता।

मैं आप से कहता हूँ कि मागने पर ही आपने कमर बांध ली है, तो सोच समझ कर मागो। भगवान से भगवान् को मागो। सच्चिदानन्द से सच्चिदानन्द को मागो। विश्वास रक्खो सच्चिदानन्द की प्राप्ति के बाद आप को इन नाशवान वस्तुओं की आवश्यकता नहीं पड़ेगी।

चीनी महात्मा कन्फ्यूशियस की यह बात याद रखिये—

"भगवान और हमारे बीच एक बहुत ही बारीक परदा है, पर वह बड़ी भरी दीवार भी है। उसे हम सासारिक वस्तुओं के प्रति मोह कहते हैं। मोह के परदे से बाहर निकल आओ, ईश्वर तुम्हें मिल जायेगा।"

पटियाला } चातुर्मास } १५—७—५४

धर्म पर दया कीजिए

मन रा उठा

आज की अपनी बात सुनाने से पहले मैं आपको यूरोप के अतीत में ले चलता हूँ इन शब्दों पर ध्यान दीजिए—

"धर्म के ठेकेदारो! धर्म तुम से जान की अमान चाहता है। तुम नहीं जानते तुम क्या कर रहे हो? तुम्हारे मुँह से धर्मोपदेश नहीं अंगारे बरस रहे हैं जिस में स्वयं तुम्हारा धर्म भस्म हो रहा है। यह मत भूलो कि जिस की हत्या करने पर तुले हो वह धर्म सारी मानवता का प्राण है।

तलवार के द्वारा धर्म प्रसार और धर्म के प्रति ग़लत धारणाएं अन्य मत मतान्तरों के प्रति घृणा और धर्म के नाम पर अविवेकपूर्ण कृत्य यह थे यूरोप में फैले ईसाई धर्मावलम्बियों के दोष, जिन्हें देख कर एक धार्मिक पुरुष का मन रो उठा और उसने उपरोक्त चेतावनी दी। यह चेतावनी थी उन लोगों को जो अपने आपको ईसाई मत *(Christiniaty)* तथा धर्म गुरु अथवा धर्मवीर समझते थे। परन्तु तत्वज्ञानी ने उन के दोषों को समझ कर, उस के

परिणाम की ओर निर्भीकता पूर्वक इशारा कर दिया। क्योंकि वह जानता था कि—

"धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः" — मनुस्मृति

जो धर्म की रक्षा करता है, धर्म उस की रक्षा करता है और जो धर्म का नाश करता है, धर्म उसको नष्ट कर देता है। इसी लिए तो कहा है—

धर्म के लिए जो जियेगा मरेगा। धर्म भी उसी का तरफदार होगा।

मेहंगी कृपा

इस प्रकार की एक नहीं अनेक चेतावनियां तत्व ज्ञानी महापुरुष उन सिरफिरों को देते रहे है जो धर्म को विकृत करके मानव समाज को पथ-भ्रष्ट करने का जाने अथवा अनजाने मे प्रयत्न करते रहते है। परन्तु धर्म की जान बख्शी उन मित्र रूपी शत्रुओं ने नहीं हुई वे धर्म को अपनी कृपा से रहित नहीं करना चाहते क्योंकि उन्हें विश्वास है कि वास्तव मे उन का रास्ता ही ठीक है।

विवेक ही धर्म है

धर्म क्या है, इस की व्याख्या शास्त्रो मे कई प्रकार से की गई है।

बताया गया है कि मनुष्य जिसे धारण करता है अथवा जो मनुष्य को धारण करता है वही धर्म है। इस से आगे बढिये तो भगवान् महावीर कहते है—

"विवेगे धम्मिये"

विवेक ही धर्म है। शास्त्रों के कोप मे ढूढिये, आप पायेगे कर्तव्य ही धर्म है अथवा जो जिस वस्तु का स्वभाव होता है वही उस का धर्म होता है। भगवान् महावीर कहते हैं—

वत्थुसहावोधम्मो"

अर्थात् वस्तु का स्वभाव ही धर्म है। जैसे अग्नि का स्वभाव है जलना और जलाना। अग्नि का धर्म जलना जलाना हुआ। यह उस का कर्तव्य भी है। पानी का स्वभाव शीतल है और वह उस का धर्म है। इसी प्रकार मनुष्य का धर्म वही है जो उस के आत्मा का स्वभाव है। आत्मा पापों के आवरण में कुछ ग्रहण निर्णय भले ही करले वह उस का स्वभाव नहीं है। भगवान महावीर आत्मा के स्वभाव को प्रगट करते हुए कहते हैं कि—

सत्-चित्-आनन्द तीन गुण हैं आत्मा के। सत और चित् ये गुण सदैव विद्यमान हैं इसी प्रकार जैसे दिन में सूर्य आकाश पर होता ही है मेघ बादलों के आवरण से भले ही वह कभी दिखाई न दे। परन्तु मेघाच्छादित नभ की ओर देख कर यह तो नहीं कह दिया जा सकता कि सूर्य है ही नहीं। इसी प्रकार आत्मा में उस के गुण विद्यमान हैं।

सत् भी, चित् भी और आनन्द भी

आत्मा सत् है क्योंकि वह अनादि तथा अनन्त है। और सत् शाश्वत होता है त्रिकाल तक रहता है, इसी लिए आत्मा के सत् होने में संशय का कोई प्रश्न नहीं। इसी प्रकार आत्मा के चैतन्य में किसी को कोई शंका नहीं है। आनन्द को प्रकृति के पापों से संचित कर्मों के आवरण ने भले ही रोक लिया हो पर ज्यों ही कर्मों का क्षय होगा आत्मा कर्मों के बन्धन से मुक्त होगी उस पवित्र आत्मा को आनन्द बल्कि सम्पूर्ण आनन्द प्राप्त हो जायेगा। इस प्रकार आत्मा सच्चिदानन्द है स्वभाव से। पर जब आत्मा परभाव में रमण करती है तो सत् और चित् होते हुए भी आत्मा का स्वाभाविक आनन्द प्राप्त नहीं है। अपने इन्हीं स्वाभाविक गुणों को जीवित रखना और उस के अनुरूप काम करते जाना आत्मा

का कर्तव्य है, अतएव वही उस का धर्म भी है।

धर्म के सम्बन्ध मे कणाद कहते हैं—

यतोऽभ्युदय निश्रेयस् सिद्धि सधर्म

जिस के आचरण से अभ्युदय और नि श्रेयस् की सिद्धि होती है वह धर्म है। यहा नि श्रेयस् साध्य है और अभ्युदय साधन है। अभ्युदय का अर्थ है जीवन निर्वाह का साधन जिसे हम अर्थ काम के रूप मे देखते हैं और नि श्रेयस् का अर्थ है मोक्ष। इस से यह निष्कर्ष निकलता है कि धर्म के आचरण से ही अर्थ, काम और मोक्ष की सिद्धि होती है।

आत्मा का संघर्ष

भगवान् महावीर कहते हैं आत्मा जब पर-भाव मे रमण करना छोड़ स्व-भाव को प्राप्त हो जायेगा तब वह सच्चिदानन्द स्वरूप बन कर मुक्त होगा। जन्म-मरण के दुखदायी बन्धन टूट जायेंगे और आत्मा का महान्-लक्ष्य प्राप्त हो जायेगा। अतएव बन्धन मुक्त होने के लिए उन समस्त शक्तियो से संघर्ष क्यों न किया जाये जो पैरों की बेड़िया बन कर आत्मा को उस के स्वभाव मे नहीं जाने देतीं। जब मनुष्य को अपने बन्धनों से मोह हो जाता है, उसकी स्वतन्त्रता की सम्भावनाएं दूर जा पडती हैं। परतन्त्रता के लिए स्वतन्त्रता की प्राप्ति उस का कर्तव्य है, क्योंकि वह स्वभाव से स्वतन्त्रताप्रिय है। अत स्वतन्त्रता के लिए संघर्ष करना, प्रयत्न करना और उस के लिए आवश्यक शुभ कर्म करना उसका धर्म है। फिर कौन है जो धर्म विमुखता को कल्याण का पथ कहने की मूर्खता करेगा।

विनोबा जी व्यक्ति के इस स्व-धर्म के सम्बन्ध में कहते हैं—

"सच तो यह है कि हमारे जन्म के साथ ही हमारा स्व-धर्म भी जन्मता है, बल्कि यह भी कह सकते हैं कि वह तो हमारे जन्म के पहले से ही हमारे लिए तैयार रहता है। क्योंकि वह हमारे

जन्म का हेतु है। हमारा जन्म उसकी पूर्ति के लिए होता है। इस जगत में हमारे लिए स्वधर्म के अतिरिक्त दूसरा कोई आश्रय नहीं है। स्वधर्म को टालते जाना मानो 'स्व' को ही टालने जैसी आत्मघातकता है। गीता के एक स्थल पर योगेश्वर श्री कृष्णचन्द्र जी ने अर्जुन को सम्बोधित करते हुए क्या ही सुन्दर उपदेश दिया है— स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः। अर्थात् पराये धर्म में जाने से अपने धर्म में मर जाना ही श्रेष्ठ है।

धर्म के चरण

धर्म जन्म का हेतु है अर्थात् हमारा जन्म ही धर्म के लिए हुआ है। आत्मा के अन्तिम लक्ष्य तक ले जाने वाला है धर्म, अर्थात् स्वकर्तव्य। लक्ष्य तक जाने के लिए एक मार्ग है उस पर निर्विघ्न चलाते रहने के लिए कुछ नियम हैं कुछ सिद्धान्त हैं। उन्हें भी धर्म कहते हैं। और दार्शनिकों ने बहुत काल तक अनुसंधान और परीक्षण (*Experiments*) करने के उपरान्त ऐसे सिद्धांत निश्चित कर दिये ऐसे उपाय निकाले जो आत्मा को पर-भाव से हटा कर स्व-भाव की ओर ले जाते हैं। जैसे सदा सत्य बोलो जो तुम्हें अपने लिए प्रतिकूल प्रतीत हो वह तुम दूसरे के साथ भी मत करो वैर से वैर की वृद्धि होती है किसी से वैर मत करो। सभी जीव सुख चाहते हैं किसी को दुःख मत पहुँचाओ। धन सम्पत्ति सब नाशवान हैं इन में लिप्त न हो। भोग लिप्सा में लिप्त हो कर मनुष्य जीवन को व्यर्थ मत जाने दो इत्यादि। अतएव इन सब को समझ कर के धर्म संस्था की रचना की गई। उन्हें अमल (*Practi e*) में लाने के लिए कुछ कार्यक्रम अथवा जीवन नियोजन (*Planing of the life*) तैयार किया। इस में नियोजन के आधीन ही कुछ रीतियाँ बनीं। यह है कुछ शब्दों में धर्म का एक चित्र।

धर्म की उपयोगिता पर विचार करने के उपरान्त ही किसी विद्वान ने कहा है।

'Knowledge without religion is death'

"धर्म रहित ज्ञान मृत्यु है।" इस से भी आगे वढें तो यह कहा जा सकता है—

'No knowledge without religion'

"ज्ञान, विना धर्म के कुछ नहीं है।"

धर्म का जीवन ही जिन्दगी है विना धर्म के वेकार जीवन।
मनुष्य जीवन है अमूल्य वस्तु न मिलता बारम्बार जीवन॥
जो धर्म वच जाये जान देकर वला से जाये सौ वार जीवन।
पै एक जीवन तो चीज क्या है निसार इसपर हजार जीवन॥

लक्ष्य एक पथ अनेक

धर्म की इस महती उपयोगिता को देख सारे मानव समाज ने उसे अंगीकार किया और फिर इस क्षेत्र में प्रतियोगिता भी हुई। सवाल यह था कि वह कौन से साधन हैं जो आत्मा को सच्चिदानन्द के रूप में परिणत कर सकें। दार्शनिकों ने कुछ भिन्न मत प्रगट किए। किसी ने महान उपायों का निरूपण किया, किसी ने सरल उपायों का दिग्दर्शन कराया।

कोई पूछे पटियाला से दिल्ली के जाने का कौन सा अच्छा रास्ता है? जिन्हें रेल यात्रा पसन्द है, वे कह सकते हैं, अमृतसर वाली लाइन से जाईये, उन्हीं में से कोई कहेगा सहारनपुर मेरठ वाली लाइन से जाइये। जिन्हे वस की यात्रा पसन्द है वह वस से जाने की राय दे सकते हैं और कोई वायुयान के सफर को भला वतला सकता है। उद्देश्य सभी का यह वताना होगा कि सुविधापूर्वक दिल्ली कैसे पहुँचे? पर विचार भिन्न हो सकते हैं। इसी प्रकार 'मुक्ति' की भी कितनी ही राहें वताई गई हैं। मानव समाज उन राहों पर

बढता २ मत-मतान्तरों सम्प्रदायों मे बट गया और फिर कौन चाहेगा यह मानना कि वह डगर जिस पर वह आ रहा है अपूर्ण है असुविधाजनक है उलझी हुई है अथवा सीधी मंजिल पर नही पहुँचती।

जब साधन से मोह हो तो

डगर पथ है, मन्जिल नहीं। पर घर की सफाई के लिए प्रयोग की जाने वाली झाड़ से भी तो लोगों को मोह हो जाता है। जीवन चलाने के लिए रोटी चाहिये रोटी साधन है साध्य नहीं पर लोग साधन के लिए पागल हो जाते हैं साध्य तक को लात मार देते हैं। इसी मिथ्यात्व के कारण लोग भटक गए चार राहों की प्रतियोगिता चल पड़ी चल पड़ी। लक्ष्य नेत्रों से ओझल हो गया। लोग लड़ने लगे अपने साधनों की उत्तमता के लिए। मानव समाज में पंथ और सम्प्रदाय उत्पन्न हुए और वे बुद्धि केलिए बन्धन बन गए, इन बन्धनों ने घरौंदे बनाए और इन घरौंदों के मोह ने आखों पर पट्टी बांध दी। इन घरौंदों ने अपने अनुयाई इन्सानों को परस्पर लड़ा दिया और इस प्रकार एक ही लक्ष्य के यात्री अपने लक्ष्य का मुंह कर आपस में गुत्थम गुत्था हो गए। लक्ष्य जब आंखों से ओझल हो जाता है तो विवेक साथ छोड़ देता है। पक्षपात जब दबोच लेता है तो ज्ञान गुम हो जाता है।

प्रतियोगिता या मुकाबले बाजी जब होने लगती है तो प्रत्येक अपनी चीज को अपने पथ का सर्वोत्तम बनाने बताने ' है और फिर अपने पथ की भूलें दिखाई नही देती। कहते हैं अपनी आंख का शहतीर किसी को दिखाई नहीं देता। अपने पथ के दोषों को भी गुण सिद्ध करने के लिए युक्तियां एवं तर्क जाले जाने लगते हैं और इस प्रकार अपने मुंह मियां मिट्ठू बनने की रीति पड़ जाती है, गाल भी मर पकने फूलने लगते हैं। पर वे जिस कोने की

सफाई न की जाए, न सफाई की ओर ध्यान दिया जाए, वहां कीड़े मकोड़े, सांप, बिच्छु आदि अपना जाल डाल लेते हैं। यही हाल हुआ है धार्मिक क्षेत्र का। मत मतान्तरों के बीच चलने वाले वाद विवाद के कारण किसी ने अपने दोषों पर विचार नहीं किया और आज कोई भी सम्प्रदाय लीजिए, किसी भी धर्म पर विचार कीजिए। मूल सिद्धान्तों की ओर उनके अनुयायियों का ध्यान ही नहीं जाता। रूढ़ियों ने जकड़ रक्खा है और दोषों ने डेरा डाल लिया है।

जब लक्ष्य की ओर से नजर हट जाती है तो काम कितना ही आसान क्यों न हो अधूरा रह जाता है। और 'शैतान' जिसे कुछ लोगों ने अज्ञान तथा मिथ्यात्व का प्रतीक माना है, प्रत्येक शुभ कार्य में हस्तक्षेप कर उसे बिगाड़ने का प्रयत्न करता रहता है। इसी को लेकर जेम्स केलर ने 'शैतान की करतूत' के नाम से एक लघु कथा लिखी है।

शैतान की करतूत

लीजिए मैं "शैतान की करतूत" सुनाता हूँ। नर नारियों ने मिलकर महल बनाना आरम्भ किया। सहर्ष सभी श्रम करने लगे। महल बनने लगा। निर्माण का कार्य तीव्र गति से चल रहा था। अपने ढंग का अनूठा महल बन रहा था। नर नारी अपने प्रयत्नों की सफलता पर हर्ष विभोर थे और कड़ी मेहनत करने लगे।

संसार में अद्वितीय वैभवशाली प्रासाद के बनने पर शैतान से न रहा गया। वह आकाश से भूमि पर आया, भले मानुस का रूप धारण कर।

आते ही उस ने निर्माण कार्य की प्रशंसा आरम्भ कर दी। अभी तक उन्हें यह ज्ञात न था कि वे एक अद्वितीय प्रासाद बना पा रहे हैं। शैतान के मुख से अपनी निर्माणकला और श्रम साधना

की भूरि भूरि प्रशंसा सुन कर सब नारियों को हर्ष तो हुआ ही अपने पर गर्व भी होने लगा। दूसरे दिन से प्रत्येक व्यक्ति ने महल के अतिशीघ्र बनते जाने का कारण अपना परिश्रम बताना आरम्भ कर दिया। प्रत्येक को अपना परिश्रम सर्वोत्तम एवं अनुकरणीय लगने लगा और प्रत्येक अपनी प्रशंसा करने में जुट गया। और फिर वे आपस में झगड़ने लगे। वाद विवाद उग्र रूप धारण कर गया। महल का काम छूट गया लोग लड़ने लगे। शैतान अपनी विजय पर गर्व करता हुआ अपने स्थान को लौट गया।

विकार सर चढ़ गया

यह दृष्टांत क्या दर्शाता है? यही न कि लक्ष्य से नजर बची और काम गया। यह होता चला आया है। धर्म के साथ भी यही हुआ। लोग अपनी २ राह पर गर्व करने लगे उसे उत्तम सिद्ध करने के काम में जुट गए और सम्प्रदाय मत-मतान्तर एवं धार्मिक मान्यताएं परस्पर वादविवाद एवं संघर्ष का मूल बन कर रह गईं। धर्म कराह उठा। मानव का मन मस्तिष्क एवं आत्मा ज्ञान विकृत हो गया। क्या आज विकार सारे समाज के सिर पर चढ़ कर नहीं बोल रहा।

नकटा सम्प्रदाय

भूल से किसी की नाक कट गई। तब भूल भयंकर मूर्खता में बदल गई। लोग उसे मूर्ख कहें यह भला वह कैसे सहता। झट से एक तरकीब निकाली। कण्ठ से शैतान बोला—"ओह मुझे भगवान् दीख रहा है।

"मैं भगवान को देख सकता हूँ, मैं भगवान् के दर्शन कर रहा हूँ। चिल्ला २ कर उसने देखने और सुनने वालों को हैरत

मे डाल दिया।

भगवान् के दर्शनों के प्यासे एक अविवेकी व्यक्ति ने सोचा "नाक काटने से ही भगवान् मिलता है, यह तो बड़ा सस्ता नुस्खा है। कौन तपस्या करता र जान जोखों मे डाले चलो थोड़ी सी नाक ही तो जाती है। न सही इतनी नाक।"

इस ने भी अपनी नाक कटा ली। पर भगवान नहीं दीखे वह पहले नकटे से बोला—"भाई मुझे तो भगवान कहीं दीखते नहीं। नाक कटा कर भी देख लिया।"

पहला नकटा बोला—" पगले! नाक गई तो गई, अब जग हंसाई क्यों करते हो। तुम भी कहो भगवान दीखते है, कुछ कुटम्ब बढ़ेगा।"

बात समझ में आ गई और अपनी मूर्खता को छिपाने के लिए वह भी भगवान के दर्शनों की डींग हाकने लगा। अब एक छोड दो नकटे हो गए। फिर क्या था जिस अविवेकी ने सुना वही नाक कटाने लगा। पहले नकटे नए नकटे के कान मे वही मन्त्र फूक देते। कहते हैं इस प्रकार नकटों का सम्प्रदाय बढने लगा। पता नहीं बात राजा तक न पहुचती और राजा भी नाक कटाने को उद्यत न होता और चतुर प्रधान मन्त्री पहले स्वयं नाक कटाने का परीक्षण करने की हठ न करता तो कौन जाने नकटों का सम्प्रदाय ही स्थापित हो जाता।

यह है अज्ञानी मानव समाज का चित्र। धर्म और भगवान के नाम पर, मोक्ष और स्वर्ग के लोभ मे अन्धविश्वास और मूर्खताओं ने फन फैलाए और कितनी ही कुरीतियो ने समाज मे आसन जमा लिया।

गंगा के पानी मे गन्दे नाले का पानी मिला देने से जैसे दुर्गन्ध युक्त एवं हानिप्रद जल बन जाता है ऐसे ही धर्म की धारा में मिथ्यात्व का गन्दा नाला आ मिलता है तो ऐसी मान्यताए

बन जाती हैं या कल्याण मार्ग पर न जा कर गर्त में छा जाती हैं।

शेक्सपीयर (अंग्रेजी का महान साहित्यिक) कहता है—

Religion without morality is a tree without fruit."

'जिस धर्म में नैतिकता नहीं वह बिना फल वाले वृक्ष के समान है।

अनैतिकता का साम्राज्य

और आज धर्म के नाम पर अनैतिकता का निरंकुश शासन है। धर्म के नाम पर क्या नहीं होता ? झूठ फरेब छल, दुराचार और अनैतिक व्यापार कौन सा ऐसा पाप है, जिस धर्म का आश्रय प्राप्त नहीं है? धर्म के नाम पर आज भी व्यक्ति बहुत है, न जाने कितने विकसित हो रही है पशुबली होती है। आज भी मन्दिरों में देवी देवताओं की प्रतिमा के सामने पशुओं के शरीर काटे जाते हैं। दक्षिणी भारत में आज भी कुछ मन्दिरों में देव-दासियां रहती हैं। मूर्तियों के साथ कन्याओं का विवाह करके व्यभिचार का प्रोत्साहन आज भी मिलता है।

मन्दिरों के पास जागीरें हैं, ट्रावनकोर कोचीन की ओर मन्दिरों में लाखों रुपये की सम्पत्ति है और अनेक स्वामी हैं वे लोग जा मन्दिर पर अधिकार जमाए हुए हैं। गंगा के तट पर लोगों का पितरों व पिण्ड के नाम पर लूट किया जाता है। ऐसे सम्प्रदाय अभी तक मौजूद हैं, जिन के शासन तक मनुष्यों को ऐसी शिक्षा देते हैं कि गुरु स्वामी है, अपनी पत्नी से ले कर सारी सम्पत्ति तक को गुरु का भोग लगवाए बिना मत भोग।

धर्म के नाम पर मक्कार लुटेरे लोगों को ठगते फिरते हैं। तीर्थस्थानों पर भोली नारियों को अपने चंगुल में फंसाने वाले भक्त मौजूद हैं। भांग गांजा सुल्फा शराब आदि का सेवन तथा कथित धर्म रक्षक देवी देवताओं की आड़ में ठाठ करते हैं। र मर्यादा के नाम पर बहनों का अन्ध कर डालने के दृश्य हमारे

समाज में आज भी मिलेंगे। मौलवी साहब की दाढ़ी का बाल तावीज़ के लिए, पाने के लिए उत्सुक नारियों के साथ कितनी ही दुर्घटनाएं हो जाती हैं।

कलकत्ते में एक बार एक ऐसे मन्दिर का पता चला जहां के पुजारी आभूषणों से लदी स्त्रियों को भूल-भुलैयों में फंसा कर गुप्त स्थानों पर पहुँचा देते थे और वहां उन की हत्या कर दी जाती थी। कब्रों की पूजा, कुओं का विवाह और पीपल पर सूत लपेटना, आदि ऐसे रिवाज हैं, जो धर्म के नाम पर होते हैं।

लकीर के फकीर बने लोग धर्म को कलंकित करने पर तुले हुए हैं। अन्धविश्वास और रूढियां धर्म की प्रतिष्ठा को समाप्त करने के कार्य को बड़ी खूबी से अंजाम दे रही हैं। धर्म के ठेकेदार जानबूझ कर अथवा अनजाने में उन सब कामों का अनुमोदन करते हैं जिन का धर्म से कोई सम्बन्ध नहीं। ऐसी दशा में मूर्खतापूर्ण कार्यों को देख कर और धर्म के ठेकेदारों द्वारा इन कार्यों को धर्म-कर्म की संज्ञा दे दिए जाने के कारण यदि 'नव युग' के तरुण धर्म की ओर से ही मुंह फेर लेते हैं तो इस में केवल उन का ही तो दोष नहीं है।

एक आध्यात्मिक विचारक ने एक स्थान पर कहा है—
"यदि पशुओं को वध करना, निरपराध जीवों के रक्त से हाथ रंगना ही धर्म है तो बताओ फिर अधर्म क्या है?"

धर्म पर दया करो

मसूर की दाल छोड़ कर व्रत व नियम का ढोंग रचना, पशु का वध कर के बलिदान करने अथवा त्याग का स्वांग रचना, मन्दिर में घण्टा हिला कर संध्या का नाम करना और टोने टोटके आदि के चक्कर में रहना किसी प्रकार भी धार्मिकता नहीं कही जा सकती। यह अज्ञान है और अज्ञान का धर्म से उतना

ही विरोध है जितना असत्य का सत्य से। प्रकाश के सामने अन्धकार नहीं टिक सकता जहाँ अन्धकार है वहाँ प्रकाश नहीं। अन्धकार प्रकाश की अनुपस्थिति की गारंटी है।

जो धर्म मनुष्य को श्रेष्ठता के पद पर पहुँचाने और बन्धन मुक्त करने का साधन था वही जब मनुष्य की अधोगति का साधन बन जाता है तब वह अनुयायियों का नाश कर डालता है। इस लिए उन सीम मुल्लाओं से जो ईमान से उस पर रत्ती जितना भी सम्बन्ध नहीं रखते धर्म दया की भिक्षा मांगता है।

चातुर्मास }
पटियाला } १६—७—५४

विवेक से काम लो

कल ही की बात है एक भाई ने मुझे बताया कि एक चवन्नी की बात पर काफी बड़ा झगड़ा होते २ बचा।

बात यह थी कि एक लड़के ने दुकान पर से कुछ सामान लिया। लड़का होगा यही कोई आठ नौ वर्ष का। दुकानदार ने जब शेष पैसे लौटाए तो उन में एक चवन्नी भी थी। लड़के ने चवन्नी लौटाते हुए कहा—"यह खोटी है, मैं नहीं लेता इसे।"

दुकानदार ने चवन्नी हाथ में ली और उलट पलट कर देखा बोला—"खरी तो है। कैसे नहीं लेता, लेनी पड़ेगी।"

बस विवाद छिड़ गया। लड़का चवन्नी को खोटी बताता था और दुकानदार खरी। बात तू तू, मैं मैं पर पहुँचने लगी झगड़ा सुन लोग एकत्रित हो गए। अन्त में यही फैसला हुआ कि दुकानदार दूसरी चवन्नी देदे। लड़के को जब चवन्नी खरी नहीं जंचती तो जबरदस्ती क्यों सिर भेडी जाए। लीजिए झगड़ा समाप्त। तमाशा खत्म हो गया और तमाशबीन अपने २ रास्ते चले गए।

दुकानदार को शिकायत थी कि जरा सा छोकरा और इतना सियाना। वह बहुत देर तक इसी प्रकार बड़बड़ाता रहा। और इधर मैं सोचने लगा आठ नौ वर्ष का लड़का यह ज्ञान रखता है

कि सिक्का खोटा है या खरा। इतनी परख है उस किसनी समझ है उस। जो उसे खरा नहीं जंचता उसे लेना नहीं चाहता और लेता है अन्त में खरा ही। यह है उस की बुद्धि और विवेक का चमत्कार।

बात तो कोई बड़ी नहीं, पर है बड़ी शिक्षाप्रद। इस घटना में तीन बातें स्मरणीय हैं। पहली बात यह कि एक भी व्यक्ति ऐसा नहीं निकला जिस ने कहा हो कि चवन्नी चाहे खोटी ही क्यों न हो, ह तो चवन्नी ही खोटी हो या खरी हमें तो चवन्नी चाहिए, इस लिए इसे ले लो। निष्कर्ष यह निकला कि सभी मानते हैं खोटा सिक्का नहीं लेना चाहिए और व्यक्ति का अधिकार है कि वह खोटा खरा परखे और ले वही जो खरा हो।

दूसरी बात यह कि बाजार में खरा सिक्का ही चलता है। और सब लोग खरी चीज के ही पक्षपाती हैं। खोटी चीज का पक्ष लेने का कोई तैयार नहीं होता।

तीसरा निष्कर्ष यह निकला कि विवेक का सभी जगह मूल्य है। व्यक्ति में विवेक-बुद्धि न होती तो कहीं भी उस की खैर न सकती है।

इस घटना के बाद से मैं यह सोच रहा हूँ कि लोग केवल चवन्नी के लिए झगड़ पड़ते हैं, जिसे उन की बुद्धि खरा स्वीकार नहीं करती उस के विरुद्ध वे डट जाते हैं। पैसे के मामले में वे इतने समझदार हैं कि छोटे से छोटा बच्चा भी ठगा जाना पसन्द नहीं करता फिर यह कौन सा कारण है कि धार्मिक मामलों में वे विवेक से काम नहीं लेते। खोटे खरे की पहचान नहीं करते। आठ नौ वर्ष के लड़के को यह तो पहचान है कि चवन्नी खोटी है या खरी पर पचास साठ साल के व्यक्ति तक को यह पहचान नहीं कि कौन पूजनीय है और कौन पूजनीय नहीं है। भगवान् महावीर विवेक को ही धर्म कहते हैं और यहां धर्म में विवेक की पूछ ही

नहीं। भेड़ा चाल है, एक व्यक्ति किसी चीज को पूजने लगता है तो दूसरे भी उसी पर सिर पटकने लगते हैं। किसी चीज की परख का सवाल ही नहीं है, अन्धविश्वास चारों ओर छाया हुआ है, यह अन्धविश्वास की बीमारी एक में तो नहीं सभी में चल रही है। सब को सुख चाहिए, फिर चाहे वह किसी से मिले? सोचने विचारने की तकलीफ ही नहीं उठाते कि जिस के द्वारा सुख चाह रहे हैं, वह सुख दे भी सकता है अथवा नहीं? बिलकुल अन्धों की कबड्डी चल रही है। अतएव अविवेक और अज्ञान का बोल बाला है। इसी लिए धार्मिक क्षेत्र मे बड़े आराम के साथ लोगों की जेबें कटती हैं। जो आता है किसी देवता को जन्म दे देता है और लोग पिल पड़ते हैं उसे पूजने के लिए। इसी लिए तो एक शायर ने कहा भी है—

"मैं न होता तो खुदा! तू भी कहा से आता
तू, फरिश्तें तेरे, यह देन मेरी तखलीक है'

कवि ने जिस खुदा और उसके फरिश्तों अथवा देवताओं की ओर संकेत किया है वह मनुष्यों की कल्पनाओं की रचनाए हैं। और है अन्धविश्वास और अविवेक के चलन का उपहास। आप मानते हैं कि बिना परखे कोई चीज नहीं लेनी चाहिए, खोटी वस्तु कभी स्वीकार नहीं करनी चाहिए और प्रत्येक वस्तु की परख मे विवेक से काम लेना चाहिए। भगवान् ने स्वय कहा है—

'परीक्ष्य भिक्षवो! ग्राह्यं, मद्वचो न तु गौरवात्'

हे भिक्षुओ! साधुओं! मेरे वचनों को भी जाचो। मेरे वचनों को भी परखो। जाचने और परखने के पश्चात यदि वे ग्रहण करने योग्य लगें तो ग्रहण करो। मेरे बड़प्पन के कारण ही मेरे वचनों को मत मानना।

भगवान् के चरणों मे रहने वाले सभी साधु जानते हैं

कि भगवान सर्वज्ञ हैं वे सत्य का अन्वेषण कर के विज्ञान का ज्ञान प्राप्त कर चुके हैं, वे केवल ज्ञानी हो चुके हैं भगवान भी जानते हैं कि उन के शिष्यों को उनके ज्ञान का पता है फिर भी कहते हैं कि अन्धविश्वास से काम न लो "विवेगे धम्म माहिए" विवेक को धर्म मानो और इस लिए अपने गुरु तक के वचनों पर यह सोच कर विश्वास मत कर लो कि वे गुरु के वचन हैं वरन् विवेक बुद्धि की कसौटी पर परख कर देखो बात खरी उतरे तो स्वीकार कर लो। परन्तु आज कौन है जो भगवान की इस शिक्षा पर अमल करता है। हां अमल करते हैं तो वहां जहां कुछ काम की बात होती है। सिक्कों के मामले में कभी अन्धविश्वास से काम न लेंगे।

एक हास्य कथा है कि किसी रईस ने एक नौकर रक्खा। उसकी ड्यूटी (*Duty*) समझाते हुए उस ने कहा—"देखो जब कभी हम घोड़े पर सवार हो कर कहीं जाया करें तो तुम घोड़े के पीछे २ चला करो।"

नौकर ने कहा—"बहुत अच्छा सरकार, जो आज्ञा"

रईस बाज़ार को चला घोड़े पर सवार हो और जीन के साथ सोने की मुहरों की थैली लटक रही थी। रईस साहब घोड़े पर सवार आगे २ और नौकर पीछे पीछे। आखिर बाज़ार में जाकर जब रईस साहब उतरे तो देखा तो थैली गायब है। उन्हों ने नौकर से पूछा—"तुम पीछे २ आ रहे थे कहीं मुहरों की थैली तो नहीं गिरी रास्ते में?"

नौकर ने कहा—"हां मालिक गिरी तो थी।"

रईस को नौकर के उत्तर से आश्चर्य हुआ उस ने पूछा—"जब थैली गिरी थी तो उठाई क्यों नहीं? हमें बताया क्यों नहीं?"

आज्ञाकारी नौकर हाथ जोड़ कर बोला—"मालिक आप ने तो मुझे घोड़े के पीछे २ चले आने का आदेश दिया था यह जो

बताया नहीं था कि कोई चीज गिरे तो उसे उठा लूँ या आपको बता दूं। मैं तो आपकी आज्ञा का पालन कर रहा था।"

रईस को बड़ी झुंझलाहट चढ़ी, क्रोध भी आया और दुःख भी हुआ, पर नया २ नौकर था, कहते भी तो क्या। अब पछताये क्या जब चिड़िया चुग गई खेत। उसने नौकर को आदेश दिया- "देखो भविष्य में ऐसी भूल कदापि न करना। जब कोई चीज गिर जाया करे तो उठा लिया करो।"

आज्ञाकारी सेवक ने शीश झुका कर आज्ञा शिरोधार्य की। बाजार से रईस ने दुशाला खरीदा और नौकर को थमा दिया, स्वयं घोड़े पर सवार होकर घर की ओर चल पड़ा। दुशाला लिए नौकर पीछे था। अब तो वह बहुत चौकन्ना था। पहली वाली भूल की पुनरावृत्ति न हो, इस के लिए प्रयत्नशील था।

कुछ दूर जाकर घोड़े ने लीद की, नौकर दौड़ा और लीद को सम्भाल कर दुशाले में बांध लिया। घर पहुँच कर पहला काम जो नौकर ने किया वह था दुशाले की पोटली मालिक को सौंपना। रईस ने पोटली हाथ में ली तो पूछ बैठा—'दुशाले में क्या बांध लाया पगले।" बड़ी विनय पूर्वक वह बोला—'मालिक अब की बार मैंने भूल नहीं की। आपकी एक चीज गिरी तो दुशाले में बांध ली।"

रईस ने पोटली खोली तो देखा लीद बन्धी है।

नौकर ने आज्ञा का पालन तो किया पर विवेक से काम नहीं लिया। उस ने यह सोचने का कष्ट नहीं उठाया कि लीद कोई ऐसी वस्तु नहीं है जो गिर जाए तो हानि होगी। बिल्लकुल यही हाल है धार्मिक अन्धविश्वासियों का। धर्म ग्रथों ने कहा देवता पूजनीय हैं। बस आज्ञाकारी भक्त की भांति देवताओं के पूजन पर कमर बांध ली। इस बात का कोई ख्याल नहीं कि देवता है कौन? और उस की पूजा करें तो कैसे? बस उन्हें तो देवता चाहिए।

किसी ने कहा कि गीता में भी कृष्ण ने कहा है—

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः ।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते ॥

'श्रेष्ठ पुरुष जो आचरण करता है, जनता उसे ही प्रमाण मान लेती है और उसी का अनुकरण करने लगती है।

एक और स्थान पर हम ने लिखा हुआ देखा कि—

"धर्म अधर्म का विवेक बहुत कठिन है अतः महापुरुष जिस रास्ते से गए हों, उसी को धर्म समझो।"

'महाजनो येन गतः स पन्थाः ।

बस फिर क्या था हम उसे लग गए उन बातों को जो महा-पुरुषों ने की हों। हम इतने बह तो भूल गए कि महापुरुष के चरण चिन्हों पर चलना है, 'महा' काट कर बस इतना गांठ बांध लिया कि पुरुष जिस रास्ते से गए हों उसी पर तुम भी चलो। इस बात का सवाल ही नहीं कि जिस की नकल कर रहे हैं वह श्रेष्ठ या महापुरुष भी है अथवा नहीं। हमें तो नकल करने से मतलब।

मुझे दुःख होता है यह देख कर कि आप लोगों ने विवेक से बिल्कुल ही नाता तोड़ लिया है। आप लोग जो यहां उपस्थित हैं उन में से कितने ऐसे हैं जो धर्म अनुष्ठान करने से पूर्व सोचते हों कि हम जो करने जा रहे हैं उस में धर्म कितना है? आप लोग इस बात का उत्तर नहीं देंगे। दें भी कैसे आप ने तो यह सुना है कि धार्मिक कृत्यों के सम्बन्ध में विचार नहीं करना चाहिए।

अब मैं बीती हुई बात को ही लूं। कल चन्द्र ग्रहण था। जिस समय चन्द्र ग्रहण हो रहा था आप लोग क्या कर रहे थे? भिखारियों और महतरों को अन्न कपड़े लत्ते और पैसे आदि बांट रहे थे न? बड़ा शोर था। "धर्म करो, दान करो" यह उपदेश कौन दे रहे थे? यही जिन की मस्ती में आप लोग

करना था। तो उस समय कौन था आप को रास्ता दिखाने वाला? कौन था उपदेशक? वही जिन को आप ने दान दिया या यूं समझ लीजिए आप के मन में बैठी हुई यह बात आप से दान करा रही थी कि चन्द्रमा देवता पर संकट आ गया है, उसे उबारने के लिए सब को दान करना चाहिए।

जब भी ग्रहण होता है आप के घरों में क्या होता है? घर में रखा पानी गिरा देते हैं और घर का आटा दाल, घी आदि जोकि मूल्यवान वस्तुएं हैं उन में घास के तिनके डाल देते हैं। ऐसा क्यों करते हैं? आप लोग ग्रहण काल को सूतक मानते हैं। पानी को सूतक लग जाता है अत गिरा देते हैं पर जो मूल्यवान वस्तुए हैं उन्हें नहीं गिराते और समझते हैं कि घास का तिनका सूतक से उनकी रक्षा कर देता है। मैं पूछता हूँ कि ग्रहण के समय क्या चन्द्रमा अछूत हो गया था?

जब कभी चन्द्र ग्रहण होता है लोग गंगा स्नान करते हैं, कल को सारे समाचार पत्रों में आपको यही समाचार देखने को मिलेगा कि गंगा के अमुक घाट पर इतने हजार अथवा लाख व्यक्तियों ने स्नान किया मानो चन्द्रमा को ग्रहण क्या लगा वह अपवित्र हो गया और देवता के अपवित्र होते ही भक्तजन भी अपवित्र हो गए, पवित्र तब होंगे जब गंगा नहा लेंगे। आप को याद होगा कि कुछ दिनों पूर्व तक ऐसी रीति थी कि कहीं धोखे से भी यदि ब्राह्मण हरिजन से छू गया तो तब तक मुंह में कौर नहीं डालता था जब तक कि गंगा जल से स्नान न कर ले। पर राहु ग्रस्त चन्द्रमा के साथ अभी तक वही व्यवहार चल रहा है। जब तक इस अपवित्र की परछाई के पाप को गंगा जल से धो न लें पवित्र हो न सकेगा।

आप लोगों से मैं पूछता हूँ कि क्या कभी आपने सोचा कि जिस लकीर को आप पीट रहे हैं उस के पीछे क्या रहस्य है?

मैं समझता हूँ आप ने इस बार में बुद्धि को कष्ट देने का प्रयत्न ही नहीं किया। अन्धकार से निकल कर प्रकाश में आने का प्रयत्न न करने पर मैं नहीं समझता आप का कल्याण हो सकेगा।

इस बात को नोट कर लीजिए कि चन्द्र ग्रहण से चन्द्र पर कोई संकट नहीं आता और न ही वह अपवित्र ही होता है। और न उसे राहु ही ग्रसता है। आईये मैं आप को चन्द्र ग्रहण का रहस्य समझाऊं।

चन्द्रमा सूर्य आदि अन्य नक्षत्रों की भांति ही आकाश में घूम रहा है। चन्द्रमा के विमान का वर्ण स्फटिक अथवा श्वेत है। उसी के साथ २ अपनी परिधि पर राहु घूम रहा है। उस के विमान का वर्ण कृष्ण है। चन्द्र का विमान ऊपर है और राहु का नीचे। उन की गति निश्चित है। अपनी निश्चित गति पर घूमते हुए ही कभी २ राहु का विमान चन्द्रमा के विमान के बिल्कुल नीचे आ जाता है। राहु जब भी ऐसे कोण से चन्द्रमा के नीचे पहुँच जाता है, कि चन्द्रमा का कोई भाग उसकी ओट में आ जावे या राहु के विमान का कोई भाग चन्द्रमा के विमान के भाग को ऐसे ढक ले कि भूमि से वह भाग दिखाई न दे उसे चन्द्र ग्रहण कहते हैं। अर्थात राहु के विमान की ओट में चन्द्रमा के विमान का आ जाना ही चन्द्र ग्रहण है।

आप पूछ सकते हैं कि फिर ज्योतिष विज्ञान से यह कैसे जाना जा सकता है कि उस दिन उस समय पर चन्द्र ग्रहण होगा? यह प्रश्न बहुत आसान है। आप लोग जानते होंगे कि छोटी कक्षाओं के बालकों से अंक गणित के कुछ ऐसे प्रश्न पूछे जाया करते हैं— "एक लड़का ४ मील प्रति घण्टा की रफ्तार से पटियाला से नरवाना की ओर चला एक घण्टे बाद एक लड़का साईकल पर पर उसे पकड़ने के लिए ६ मील प्रति घण्टा की गति से चला, बताओ साईकल सवार लड़का पैदल लड़के को कितनी देर में पकड़

लेगा ?" अंक गणित का विद्यार्थी इस प्रश्न को हल करके बता देता है। इसी प्रकार ज्योतिष विज्ञान के छात्र दो विमानों की रफ्तार का हिसाब लगा कर ऐसा समय निकाल लेते हैं जबकि एक विमान के नीचे दूसरा विमान आ जायेगा।

चन्द्र ग्रहण का उपरोक्त रहस्य जैन शास्त्रों के अनुसार मैंने बताया। वैज्ञानिक दूसरी बात मानते हैं, उन का कहना है कि जब चन्द्र घूमते २ कभी पृथ्वी की ओट में आ जाता है, चन्द्र ग्रहण हो जाता है। मतलब यह है कि यह बात सभी मानते हैं कि चन्द्रमा को राहु नहीं ग्रसता और न चन्द्रमा पर कोई संकट ही आता है।

हां, चन्द्र ग्रहण के पश्चात् स्नान करने अथवा तरल पदार्थ फेंकने की रीति के पीछे एक रहस्य है। चन्द्रमा औषधीप कहा गया है। चांद की रश्मियों से औषधियों का पालन पोषण होता है। आप सोचिए यह बात किस ओर संकेत करती है ? इस का यही अर्थ तो हुआ कि चन्द्रमा की किरणों में विशेष प्रकार के कीटाणु उत्पन्न करने की क्षमता होती है। किरणें विश्व के जीवन पर, जीव आत्माओं पर अपना प्रभाव डालती हैं। और जब राहु का विमान चन्द्रमा के किसी भाग को ढक लेता है तो उस की किरणें सीधी भूमि तक नहीं आ पातीं, वरन तिरछी हो कर पड़ती हैं। जिस कोण से शशि रश्मियां भूमि तक आती हैं वह बदल जाती हैं। वैज्ञानिकों ने यह खोज कर ली है कि किरणों में भी रंग होते हैं, उन में भी प्राण शक्ति होती है। जब सूर्य की कुछ किरणें सीधी भूमि पर नहीं आ पातीं, यह तभी होता है जब सूर्य और भूमि के बीच बादलों का गहरा आवरण आ जाता है, तब वे बादलों से टकरा कर टूट जाती हैं और उन के द्वारा आकाश में इन्द्र धनुष के सप्त रंग चमक उठते हैं। वे रंग किरणों में ही तो विद्यमान होते हैं। हां सीधे जब वे भूमि पर आती हैं तो उन का आंतरिक

रंग दिखाई नहीं देता।

एक बात और। आप ने उसे इलाज के बारे में सुना होगा जिसे लोग सूर्य उपचार भी कहते हैं। वैद्य सूर्य प्रकाश में विभिन्न रंगों की बोतलों में पानी भर कर रख देते हैं और सूर्यास्त के समय उन्हें वहां से हटा लेते हैं। बस औषधि तैयार हो जाती है वैद्य का ज्ञान है कि किस रोग में कैसे रंग की बोतल का पानी देना चाहिए। आप सोचिए उस पानी को क्या हो जाता है? एक विशेष रंग की बोतल में सूर्य की रोशनी में रख देने से पानी में रोग सह करने की शक्ति कैसे उत्पन्न हो जाती है? यह मानना पड़ेगा कि किरणों में भी वस्तुओं के गुण बदल देने की शक्ति है।

चन्द्रमा की रश्मियों में भी विशेष गुण हैं, अतः ग्रहण के समय उन का कोण बदल जाने से वे वायुमण्डल पर ऐसा प्रभाव डालती हैं कि उन से विशेष रोगों के कीटाणुओं के जन्म ले लेने का भय होता है और वस्तुओं पर उसका दुष्प्रभाव पड़ सकता है। अतः चन्द्र ग्रहण के उपरान्त पानी गिरा देने और बहते पानी में जिस में कीटाणु नाशक शक्ति हो स्नान कर लेने का रिवाज पड़ा। गंगा जहां से निकली है समझा जाता है कि वहां गंधक आदि की खान हैं और खानों के कारण गंगा जल में गंधक आदि कीटाणु नाशक पदार्थों का गुण आ जाता है।

यह है वह रहस्य जिसे लोग समझने की चेष्टा नहीं करते। यदि विवेक बुद्धि से काम लिया जाए तो अपने समस्त आचरणों की परख की जा सकती है और उचित तथा अनुचित के बीच लकीर खींची जा सकती है अन्यथा आप काम करते जाईये सम्भव है कितने ही अज्ञानवश अनुचित काम आप से हो जायें।

मैंने चन्द्र ग्रहण पर जो प्रकाश डाला और शास्त्रानुसार उस की व्याख्या की आप बताईये उसका आप पर क्या प्रभाव पड़ा? आप कहेंगे महाराज आपने हमारी आंखें खोल दी मैं कहता हूं आंखें

बोलने की बात जाने दीजिए। यह सब सुनकर क्या आप को सन्तोष नहीं हुआ? सन्तोष इस बात का कि पानी आदि चन्द्र ग्रहण के बाद फेंक देने जैसे कार्य युक्ति संगत हैं और आप ने जो किया अच्छा किया। यदि आप को इस से सन्तोष हुआ तो आप समझ लीजिए कि आप के कृत्य का उचित लाभ आप को हो सकेगा। क्योंकि किसी भी काम के करने में मनुष्य की क्या भावना होती है उस के फल पर इस का बहुत प्रभाव पड़ता है। उदाहरणार्थ मैं आप का ध्यान भारतीय दण्ड विधान की ओर खींचू। आपको ज्ञात होगा कि हत्या के केस में न्यायाधीश को यह ध्यान रखना होता है कि अपराधी ने हत्या किस भावना से की। यदि हत्या अज्ञानतावश हुई, अर्थात् हत्यारा मृत व्यक्ति की हत्या नहीं करना चाहता था, वरन अनायास ही उस के गोली अज्ञानतावश लग गई तो न्यायाधीश उस का दण्ड कम देगा, उस हत्यारे की अपेक्षा जिस ने हत्या करने की इच्छा से आक्रमण किया था। इसी प्रकार आप जो कार्य करते हैं उसके पीछे आप की क्या भावना है, यह उस के फल पर प्रभाव डालेगा।

यह तो मैंने चन्द्र ग्रहण के सम्बन्ध में आप को बताया। पर मेरी इस व्याख्या में वह दोष नहीं ढक जाता जो आजकल धार्मिक कृत्य करने में रहता है। विवेक से काम न ले लोग अन्धानुकरण करते हैं, यह बात कल रात को हुए चन्द्र ग्रहण के अवसर पर लोगों द्वारा किए गए कार्यों से भी सिद्ध हो जाती है।

जैसा कि मैंने पहले भी कहा था लोग अज्ञानता के शिकार हैं, वे किसे पूजें क्यों पूजें और कैसे पूजें, इस बात पर तनिक सा ध्यान नहीं देते। उन बेचारों को यह ज्ञात नहीं कि देवता कितने हैं? हिन्दुओं के देवताओं की तो संख्या ही का पता नहीं चलता। कहते हैं करोड़ों देवता हैं। मेरा ख्याल है कि कोई भी वैष्णव अपने देवताओं के नाम नहीं गिना सकता। क्या है कोई

ऐसा वैष्णव आपकी नजर में जो सारे देवताओं के नाम जानता हो ? कभी हम चार लोग ध्यान भी नहीं देते।

देवताओं की बात चल रही है इस अवसर पर मुझे स्वामी रामतीर्थ के जीवन की एक घटना याद आ गई। एक बार उनके कुछ अंग्रेज मित्र भारत आये। उन की इच्छानुसार स्वामी जी उन्हें रामेश्वर के मन्दिर के दर्शनों को ले गए। जब मन्दिर जाने के लिए वे पहाड़ी पर चढ़ने लगे तो अंग्रेजों ने पूछा—"स्वामी जी आप लोगों के कितने देवता हैं ?"

स्वामी जी ने प्रश्न का कुछ उत्तर न देकर रास्ते के किनारे २ पत्थर उठा २ रखने आरम्भ कर दिए, एक पत्थर उठा कर रखते और उस पर तिलक लगा देते इस प्रकार ऊपर पहुँचते २ उन्होंने चालीस पत्थर रक्खे। जब मन्दिर के दर्शन करके वे मित्रों सहित लौटे तो उन्हों ने अपने अंग्रेज मित्रों को दिखाया वे पत्थर जो उन्हों ने रास्ते के किनारे रक्खे थे देवता के रूप में पुज रहे थे। पीछे आने वाले दर्शनार्थियों ने यह समझ कर कि यह पत्थर भी देवता है, उसपर खील बताशे चढ़ाने आरम्भ कर दिए थ। किसी२ पत्थर के पास कोई पुजारी भी आ जमे थे और लोग बताशों से ले कर पैसे तक चढ़ा रहे थे।

स्वामी रामतीर्थ बोले— आप लोगों ने देवताओं की संख्या पूछी थी उसकी संख्या मैं क्या बताऊं। स्वयं देख लें। चालीस देवता तो हमने ही बना दिए।"

यह है भारत वर्ष में चल रही भेड़ चाल। न शास्त्र का किसी को ध्यान है न महापुरुषों के वचनों की ओर नजर है और न अपनी बुद्धि का ही प्रयोग करने की इच्छा होती है।

देवता कहते किसे हैं ? यह जानना आवश्यक है, लोग यह जान लें तो फिर जो चाहे देवता बना कर तैयार न कर दिया करें। देवता का अर्थ है दिव्य शक्ति का धारक। दिव्य शक्ति जिस के

नहीं वह देवता ही नहीं है। शास्त्र कहता है आध्यात्मिक देवता केवल एक है जिसे 'अरिहंत' कहते हैं और लौकिक देवता चार प्रकार के हैं—

१ भवनपति
२ वाणव्यन्तर
३ ज्योतिषी
४ वैमानिक

ये सभी दिव्य शक्ति के धारक हैं। इन के अतिरिक्त देवताओं की उत्पत्ति का अर्थ है डालडा मार्का देवताओं की रचना।

आजकल तो देवताओं का दुरुपयोग करने की रीति चल पड़ी है। उदाहरण के लिए मैं आप से पूछू कि आप अग्नि को देवता मानते हैं या नहीं? मानते हैं। आप उसे चाहे कितना ही पूजें कितनी ही आहुतिया क्यों न दें, कितना ही शीश क्यों न झुकाएं, क्या अग्नि जलने और जलाने के स्वभाव का परित्याग कर सकती है? कदापि नहीं। आप को विश्वास न आये तो किसी दिन एकाग्रचित्त हो अग्नि देव का ध्यान लगाईये, घण्टों उस की पूजा कीजिए और फिर तनिक उंगली लगाईये। आप को पता चल जायेगा कि पूजा पाठ के बाद भी उस का वही स्वभाव है। यही बात जल के साथ है। कितनी ही पूजा करें उस का अपना स्वभाव नहीं बदल सकेगा। मुसीबत यह है कि आप देवता को पूज्य मान कर बस उसे पूजने भर के इच्छुक रहते हैं। मैंने देखा है कि लोग घरों मे सर्प पूजन करते हैं पर आज तक नहीं सुना कि सर्प की पूजा के बाद नाग देवता प्रसन्न हो कर अपने भक्त को अभय दान दे गए हों, जिन्हें भ्रम हो वह नाग की पूंछ पर हाथ रख कर देख लें।

देवता का सदुपयोग ही उसकी पूजा है, जिन लोगों ने उनका सदुपयोग किया है, देवता उन से प्रसन्न हो कर मन इच्छित

वरदान भी दे गए हैं। पुराण वालों ने अग्नि देवता के स्वभाव को परखा जल देवता को परखा और फिर दोनों के गुणों की परख कर के आप तैयार की और उस भाप से गाड़ी चलाई। अग्नि और जल दो देवताओं के सदुपयोग से उन्हों ने लम्बे चौड़ विश्व को सिकोड़ कर रख दिया। पहले बम्बई से दिल्ली आने में एक मास लगता था अब डेढ़ दिन लगता है बताईए बम्बई दिल्ली के निकट हो गई या नहीं ? किस के वरदान से ? अग्नि और जल देवता के वरदान से ?

देवता की पूजा के लिए धूप घी बाती की आवश्यकता नहीं है, उस के लिए विवेक चाहिए। बुद्धि द्वारा उन के स्वभाव को समझो और नई २ खोज अनुसन्धान करो अनुसन्धान की तपस्या द्वारा देवता का वरदान आप को मिलेगा। स्मरण रक्खो, देवता को सेवता बना देने पर मानव का कोई हित न होगा। आज आप ने देवता को सेवता ही बना डाला है।

किन्तु दु:ख है तो इस बात का कि आप बुद्धि लगाते हैं केवल सिक्कों की परख में। आप का बच्चा २ सिक्के की परख जानता है पर आप आध्यात्मिक क्षेत्र में किसी प्रकार की परख नहीं चाहते। जब सिक्के की धातु का मूल्य सिक्के के मूल्य से गिर जाता है या नकली सिक्के बनने लगते हैं और फिर नकली सिक्के के असली सिक्कों में गड़ बड़ हो जाने पर सिक्कों के प्रति मानव हृदय में शंका उत्पन्न हो जाती है। उस समय विवेक की आवश्यकता होती है उन की परख के लिए। आज देवताओं की इतनी भीड़ लगी है कि बिना विवेक के मनुष्य का पथ भ्रष्ट हो जाना सम्भव है।

आप का इतिहास बताता है कितने ही महापुरुष ऐसे भी हुए हैं लौकिक देवता जिन की रक्षा करते थे। लौकिक देवता उन की सेवा के लिए सदैव तैयार रहते थे। इस युग में भी मानव ने

अपनी बुद्धि से लौकिक देवताओं की शक्ति को अपना दास बना लिया है। बिजली के तनिक से लट्टू मे प्रकाश को बाधा, पखे के द्वारा पवन देवता को नाच नचाया। इसी प्रकार बुद्धिमान विवेक-शील लोग लौकिक देवताओं की शक्तियों को अपनी सेवा के लिए अपनी इच्छानुसार प्रयोग करने के काम पर लगे हैं। आप भी देवताओं के मामले में विवेक से काम लें तो कोई कारण नहीं कि देवता आप के इच्छित कार्यों को पूरा न करें। हां, जब तक आप देवताओं की रचना में लगे रहेंगे, वेढगी पूजा मे सिर खपाये रहेंगे जब तक आप धार्मिक क्षेत्र मे विवेक से काम न लेंगे, आप सिर मारते रहेंगे और आपके पल्ले कुछ न पड़ेगा।

चातुर्मास }
पटियाला }

१८—७—५४

पूजा, पूज्य और पुजारी

कल मैंने आप से एक बात कही थी कि आप धार्मिक कर्मों के सम्बन्ध में विवेक से काम लें दूसरों का अन्धानुकरण न करें और लकीर के फकीर न बनें। इसी की चर्चा में देवताओं की पूजा का भी प्रश्न आ गया था और मैंने कहा था कि आप लोग देवताओं का दुरुपयोग न करें मानव का कल्याण देवताओं के सदुपयोग में है। उन का सदुपयोग ही वास्तव में उन की पूजा है।

कल की उसी बात में एक प्रश्न छिपा है वह यह कि पूज्य क्या है और पूजा क्या है? यह प्रश्न कुछ आसान नहीं है। मुझ से इस बारे में कुछ भाईयों ने प्रश्न किए हैं पर यह प्रश्न सार्वजनिक हित के हैं अत. व्यक्तिगत रूप में इस का उत्तर न दे कर मैं सार्वजनिक रूप में ही इस का उत्तर दे रहा हूँ।

मैं अपने विचार प्रगट करने से पूर्व आप को बता दूँ कि कौन पूज्य है और पूजा क्या है, यह एक सनातन प्रश्न है जब से मानव मस्तिष्क में ज्ञान अंकुरित हुआ तभी से यह प्रश्न 'साध्य' रहा खोज रहा है मानव ने अन्वेषण और अनुसंधान के द्वारा इस गांठ को खोलने का प्रयत्न किया है। वस्तुतः मैं तो

कहता हूँ कि विश्व में जितने आध्यात्मिक दर्शन हैं, उन सब का प्रादुर्भाव ही इस प्रश्न को लेकर हुआ है। पूज्य कौन है, मनुष्य किस की पूजा करे, किस की आराधना करे, किस के आगे नत मस्तक हो यह विवाद का विषय रहा है और मैं तो यह मानता हूँ कि आज भी यह विवाद चल रहा है। हां इस प्रश्न के उत्तर महापुरुषों की ओर से दिए जा चुके हैं। अपने उत्तर के समर्थन में ही महापुरुषों ने वह ज्ञान दिया जो भिन्न २ रूप मे मानव के सामने आया है और फिर जिस महापुरुष के उत्तर से जितने लोग सन्तुष्ट हुए, उतने ही उस के पीछे चल पड़े। मैं स्वयं स्याद्वाद का समर्थक हूँ, मैं भगवान् महावीर के दर्शन में विश्वास रखता हू क्योंकि मैं महावीर के दर्शन में सत्य के दर्शन करता हूँ।

मैं क्या मानता हूँ? यह बात इतनी महत्वपूर्ण नहीं है जितना महत्व इस का है कि मानव समाज ने किस विचार को उपयोगी मान लिया है और बुद्धिजीवि जगत मे किन विचारों का समर्थन किया जाता है, इस से भी अधिक महत्वपूर्ण बात यह है कि बुद्धि की कसौटी पर कौन सी बात खरी उतरती है।

महात्मा गाधी से एक-बार किसी ने कहा—"आप की अहिंसा की नीति लोगों की समझ में नहीं आती।"

जानते है गाधी जी ने क्या उत्तर दिया? वे बोले—"जो बात असत्य है चाहे उस के पीछे सारा ससार भी क्यों न हो जाए मैं उसे स्वीकार न करूगा। सत्य का अनुयायी रहने पर मैं अकेला ही क्यों न रह जाऊं अपने पथ से विचलित नहीं हूगा।"

इसी लिए लारेंस ने कहा है—

"मैं वह बात मानता हूँ जिसे मेरी बुद्धि स्वीकार करती है। मेरी बुद्धि मानती है कि भगवान् है और उस के अतिरिक्त और कोई सत्ता नहीं जिस के सामने मुझे झुकना चाहिए अत मैं इसे स्वीकार करता हूँ, यही मेरे लिए सत्य है।"

एक नहीं इतिहास में ऐसे कितने ही उदाहरण मिलते हैं कि लोग पथ भ्रष्ट हो गए और कोई एक महान आत्मा उठा उस ने अज्ञान का विरोध किया लोगों ने उस का विरोध किया उस सत्य के लिए विभिन्न प्रकार के संकटों में रहना पड़ा और अपनी बात के लिए प्राणोत्सर्ग भी करना पड़ा पर अन्तिम श्वास तक उस ने अपनी ही बात दोहराई लोगों को अन्त में उस की बात स्वीकार करनी पड़ी। ऐसी महान आत्माओं का प्रेरणास्रोत क्या था ? आत्मा की स्वीकृति। आत्मा कहती थी कि यह बात सत्य है और यही बस सत्य है अतः उन्हों ने उसका परित्याग नहीं किया।

मैं भी आप से यही कहता हूँ दुनिया क्या कहती है, इस बात से अधिक महत्वपूर्ण बात यह है कि विवेक क्या कहता है आत्मा क्या स्वीकार करती है। अंग्रेज विचारकों ने मानव द्वारा भगवान की पूजा और भगवान की खोज का जो इतिहास तैयार किया है उस का कहना है कि एक समय लोगों ने प्रत्येक उस शक्ति को पूजा जिस से उन्हें भय लगा। जिसे उन्हों ने अजेय समझा। नील नदी के किनारे रहने वाले व्यक्तियों को नदी पार जीविका उपार्जन के लिए जाना पड़ता था। यह सभ्यता के उदय काल की बात है। लोग नदी पार करने के लिए वृक्षों के तने प्रयोग करते थे। तने का बोझा चपटा किया और उसे नदी में डाल कर उस पर बैठ गए। और नदी के पार चले गए पर रास्ते में घड़ियाल (नाका) एक कभी किसी को लकड़ी पर बैठे बैठे खाता चला जाता था। बस उन्हों ने समझा यह पंछी भी शक्ति है जो हम से अधिक बलिष्ठ है। अतः उसे पूजने लगे।

उन्हीं विचारकों का कहना है कि एक समय तक लोग आग, सांप हवा पानी घास आदि उन सभी को पूजते रहे हैं, जिन से उन्हें भय लगता था अथवा जिन्हें जीवन के लिए नितान्त आवश्यक समझते थे। आज भी पारसी लोग आग के पुजारी

हैं, उन के पूजाघरों में अग्नि प्रज्वलित रखी जाती है। अंग्रेज विचारकों का मत है कि आदिम पूजाओं के अवशेष आज भी किसी न किसी रूप में विद्यमान हैं।

परन्तु ऐसी सभी पूजाएं जो भयवश अथवा स्वार्थवश चलीं, लुप्त होती चली गईं, बिल्कुल अन्धकार की भांति, प्रकाश की किरणे जब फैलती हैं तो अन्धकार आगे २ भागता चला जाता है। सभ्य संसार ने इस प्रश्न को सुलझाने का प्रयत्न किया कि क्या कोई ऐसी भी शक्ति है जो मनुष्य से महान है और जिस के सामने नतमस्तक होना चाहिए।

यह बहुत बड़ा इतिहास है, इसे जाने दीजिए। मैं फैलते जा रहे इस विषय को समेट लू। तात्पर्य यह है कि एक बात को सभी ने स्वीकार किया है कि सत्य ही पूजनीय है। सत्य ही धारण करने योग्य है। सत्य की ही प्रतिष्ठा होनी चाहिए। और भगवान् महावीर ने कहा है—

"ज सच्च तंखु भगव"

'सत्य ही परमात्मा है या भगवान् ही सत्य है"

किसी ने कहा—"सत्य अजेय है" 'सत्यमेव जयते नानृतम' सत्य की ही जय होती है अन्य की नहीं।

किसी ने भगवान को सत्य मान कर उस की पूजा को धर्म बताया तो किसी ने भगवान् को सत्य का प्रवर्तक कह कर उस की पूजा को कर्तव्य माना।

किसी ने कुछ कहा हो लोगों ने यह मान लिया है कि वह शक्ति जो मनुष्य से महान् है, जो पवित्र है, जो ज्ञान का भंडार है और जो मनुष्य प्रत्येक समय पथ प्रदर्शन करती है, वह और जो कभी नष्ट नहीं हो सकती, अनन्त है वह पूजनीय है।

पूजा का सीधा साधा अर्थ है किसी की महानता को स्वीकार करना किसी के उच्च स्तर को मानना अथवा किसी के प्रति श्रद्धा

व्यक्त करना। पूजा द्वारा किसी के गुणों का गान भी होता है और अपने सामने उनके आदर्श का प्रतिष्ठित करना भी। किसी व्यक्ति विशेष का हार्दिक अभिनन्दन करना पूजा ही है। पूजा कैसे की जाए? इस पर विभिन्नता हो सकती है, पर पूजा के पीछे क्या भावना रहती है, इस पर सभी सहमत हैं। अपनी भावनाओं को किसी में केन्द्रित करना ही उसकी पूजा है।

जब पूजा की यह व्याख्या स्वीकार कर ली जाती है तो मैं आप से पूछता हूँ कि फिर पूज्य कौन है? क्या वह शक्ति जिस से किसी कारण व्यक्ति भयभीत है, पूज्य हो सकती है? यदि वह भी पूज्य हो जाये तो फिर वह शत्रु जिस से अपनी रक्षा करने की आवश्यकता होती है पूजित न होकर पूज्य हुआ। आज के युग के प्रचलित विध्वंसकारी अस्त्र एवं शस्त्र ऐटम बम हाईड्रोजन बम राकेट आदि सब तो पूज्य हो जावेंगे। परन्तु कौन मूर्ख ऐसा है जो इन की पूजा करेगा?

आज तो पूज्य शब्दकी दुर्गति हो रही है। जिस की चापलूसी करनी होती है उसी को पूज्य की संज्ञा से सम्बोधित कर दिया जाता है; जिस से किसी प्रकार का भय हो कोई स्वार्थ पूरा करना हो उसी को 'पूज्य' की उपाधि दे दी जाती है। 'पिता' के विचारों और व्यवहार से चाहे पुत्र सन्तुष्ट हो या न हो वह उसके प्रति आदर भाव रखता हो या न रखता हो किन्तु पत्र लिखते समय उसे 'पूज्य पिता जी' से सम्बोधित करेगा। राजनीति के खिलाड़ियों को जो प्रतिदिन सत्ता के दांव पेंच में ही लगे रहते हैं और जिनके जीवन का येन केन प्रकारेण सत्ता प्राप्ति अथवा सत्कार प्राप्ति ही लक्ष्य होता है, पूज्य कह पुकारा जाता है। मिट्टी की मूरत को पत्थर की प्रतिमा को कलाकार की सुन्दर कृति सभी को परम पूज्य कह कर याद किया जाता है। लोगों को इस बात का ध्यान ही नहीं है कि पूज्य है कौन? पूजनीय का अर्थ क्या है? और

मनुष्य के लिए पूजनीय हो कौन सकता है ? मैं फिर इस बात को दोहराता हूँ कि जो श्रद्धा योग्य है, जो सत्य का ज्ञाता है, जो मनुष्य से ऊँचा है, वह मनुष्य के लिए पूजनीय है।

पूजनीय के सामने मनुष्य नतमस्तक होता है। मस्तक मनुष्य का उच्च स्थान है। मस्तक शरीर के ऊपर है क्योंकि मनुष्य के शरीर मे वह बुद्धि जो उसे श्रेष्ठ बनाती है, जिस के कारण वह समस्त योनियों मे श्रेष्ठ माना गया है, उस के सिर मे ही सुरक्षित रहती है। सिर मनुष्य के शरीर यन्त्र का स्विच बोर्ड है। सारे शरीर का सचालन सिर की ज्ञान-तन्त्रियों से ही होता है। अतएव शीश उसी के सामने झुकता है जिस की ज्ञान सत्ता को मनुष्य की बुद्धि स्वीकार करती है। हम शीश झुकाते हैं तो उस का अर्थ होता है हम उसे ज्ञानी मानते हैं, अपने से अधिक योग्य और श्रेष्ठ स्वीकार करते हैं।

कहा जाता है वीर पुरुष किसी के आगे शीश नहीं झुकाते। इस कथन के पीछे क्या भावना है ? यही कि मनुष्य को मनुष्य की सत्ता स्वीकार नहीं करनी चाहिए। जिस के आगे शीश झुकाया जाता है, उस के आगे ज्ञान तन्त्री समर्पित की जाती है और ज्ञान तन्त्री पर जिस का अधिकार होता है हम उस के बन्धन रहित, बेडी रहित दास हो जाते हैं। इस का एक नैतिक पहलू भी है जिस के आगे शीश झुकता है उस के आगे मनुष्य का हाथ नहीं उठना चाहिए उस के विरोध में बुद्धि से लेकर कोई भी इन्द्रिय प्रयोग नहीं की जानी चाहिए।

अतएव मनुष्य को शीश उसे झुकाना चाहिए जिसकी महानता को वह आत्मा से स्वीकार करता हो। आप को याद है ? मुगलों के राज्य मे कुछ वीर राजपूतों ने सदा विद्रोह की पताका लहराई। उन्होने अपना शीश नहीं झुकाया मुगलों के दरबार मे। महाराणा प्रताप का दूत मुगल सम्राट के दरबार में जाता है तो शीश नहीं

झुकाया कालिमा बजानी भी पड़ी तो महाराणा प्रताप की ही हुई पगड़ी उस ने पहन ही उतार ली। क्यों? क्योंकि पगड़ी महाराणा प्रताप के शीश की प्रतीक थी। केवल महाराणा प्रताप ने शीश न झुकाने की प्रतिज्ञा की तो उसका अर्थ होता था मारवाड़ पर मुगलों के प्रभुत्व की अस्वीकृति। प्राणों के साथ होली खेली पर शीश नहीं झुकाया। यह था वह आदर्श जिस हम वीर पुरुषों का आदर्श कह कर पुकारते हैं।

नई सभ्यता उग रही है, नई संस्कृति के अभ्युदय की प्रक्रिया चल रही है और नए विचार प्रस्फुटित हो रहे हैं इस युग में नाद उठ रहा है—"मानव मानव सभी समान" कौन बड़ा कौन छोटा। एक मनुष्य दूसरे मनुष्य के सामने नतमस्तक हो यह मानवता की तौहीन है। इस नाद की जड़ें कहां हैं? इसी विचार में था कि मानव का शीश मानवोत्तर शक्ति के सामने ही झुक सकता है मानव का शीश उस के आगे झुकना जो पूजनीय है और पूजनीय वह है जिस का ज्ञान शाश्वत है जो उस सत्य का धारक है जो अनादि है और अनन्त है।

इस प्रकार यह प्रश्न इस रूप में हल हो जाता है कि पूजो उसे जो मानव से महान है पूजो उसे जो सत्य का धारक है, पूजो उसे जिस के ज्ञान की सत्ता स्वीकार है। पूजो उसे जो मानव समाज का कल्याण के पथ पर नेतृत्व कर सके।

कल्पना मानव के मस्तिष्क की उपज होती है वह प्रशंसनीय हो सकती है रुचिकर हो सकती है पर पूजनीय नहीं। कला चाहे मूर्ति के रूप में हो अथवा चित्र के रूप या चाहे साहित्य के वेष में वह सुन्दर हो सकती है, मोहक हो सकती है और उस की प्रशंसा भी की जा सकती है, पर पूजनीय नहीं हो सकती। कोई व्यक्ति जिस के काम को चुनौती न दी जा सकती हो जो मानवीय अवगुणों व कमजोरियों से ऊपर उठ चुका है जो

ज्ञान का भण्डार है और जो मानव के स्तर से ऊंचा जा चुका है जिस की ऊचाई की सीमा को मानव छू न सके पूजनीय है।

अपनी श्रद्धा व्यक्त करते समय ध्यान रहे कि आप जो कर रहे हैं वह इस बात का प्रतीक है कि आप उस के द्वारा प्रदर्शित मार्ग पर ईमान ले आए हैं। आप की बुद्धि ने स्वीकार कर लिया है कि पूज्य का मार्ग ही सर्वोत्तम है और आप को उस मे आस्था तो है ही आप उसके द्वारा प्रदर्शित मार्ग का अनुसरण करने का भी व्रत लेते हैं। यह व्रत ही आप की पूजा है।

जैन अरिहन्त को पूजनीय मानता है। अरिहन्त का क्या अर्थ है? अरि अर्थात शत्रु और हन्त अर्थात नष्ट करने वाला। शत्रु नाशक हुआ अरिहन्त का अर्थ। बात अभी अधूरी रह गई। आप पूछेंगे कौन से शत्रु का नाशक अरिहन्त कहलाता है? आप जानते होंगे मनुष्य के दो ही सब से बड़े और खास शत्रु हैं राग और द्वेष। इन दो शत्रुओं के कारण ही तो ससार में और शत्रु जन्म लेते हैं जो प्रत्यक्ष दिखाई देते हैं। राग और द्वेष ही तो मनुष्य को मनुष्य नहीं बनने देते और यही तो वे शत्रु हैं जो मानव को दु खों से मुक्ति नहीं पाने देते। यहा दु खों से किन दु खों की ओर सकेत है? जन्म मरण का चक्र तो सब से बड़ा दु ख है, इसी दु ख के कारण तो सासारिक दु खों में मनुष्य आत्मा को फसा देते हैं। अतएव राग और द्वेष जैसे भयानक शत्रुओं का नाश करने वाला अरिहन्त कहलाता है।

अरिहन्त को 'अर्हत् भी कहते हैं। 'अर्हत्' का क्या अर्थ है? 'अर्हन का अर्थ है योग्य। किस काम के योग्य? पूजा करने के योग्य। क्योंकि जो महापुरुप राग द्वेष को जीत कर मुक्त हो जाता है वह स्वयं ही मुक्त नहीं होता वरन् अन्य दु ख पीडित आत्माओं को भी मुक्ति का मार्ग दिखा जाता है अत वह पूजनीय होता है।

अरिहन्त या अर्हन् जिन्हें जिन भी कहा जाता है। पूजनीय माने गए क्योंकि वे स्वयं मुक्त हुए, उस ज्ञान को प्राप्त हुए जो सत्य है। उन्होंने उस राग द्वेष का दमन किया जिस के माया जाल में संसार की असंख्य आत्माएं दुःख उठा रही हैं और संसार को ऐसा ज्ञान दिया जिस के द्वारा मुक्ति का पथ प्रशस्त हुआ।

दौड़ में जो आगे निकल जाता है वह प्रथम आता है वह पुरस्कृत होता है परीक्षा में जो सर्वाधिक नम्बर पाता है वह अव्वल आता है उसे छात्रवृत्ति मिलती है उस की प्रशंसा की जाती है और बड़ी कक्षाओं में प्रथम आने वालों के चित्र समाचार पत्रों में छपते हैं। इसी प्रकार जीवन की दौड़ में आत्मा की निर्मलता की परीक्षा में जो आगे रहता है जिस से हम पीछे रह जाते हैं वह हमारे लिए आदर्श हो जाता है उस का काम हमारे लिए प्रेरणादायक हो जाता है अतः वह हमारा श्रद्धा पात्र है।

प्रश्न उठता है कि वे जो महान हैं जिन के प्रति हमें श्रद्धा व्यक्त करनी चाहिए, जो पूजनीय हैं उन के लिए हम क्या करें ? या यूं कह लीजिए कि उन की पूजा हम कैसे करें ? क्या उन की मूर्ति या उन पर चढ़ावा चढ़ा कर, धूप बाती जलाकर उन के आगे नाच गा कर ? नहीं। पूजा का अर्थ चढ़ावा नहीं है पूजा का अर्थ नृत्य अथवा प्रसन्न करने के लिए भाव भंगिमाओं का प्रदर्शन नहीं है और न पूज्य की मूर्ति बना कर उस को सजाना ही पूजा है।

तब फिर पूजा क्या है ? मैं आप से पहले भी कह चुका हूं फिर समझ लीजिए पूजनीय आत्माओं की भक्ति ही पूजा है और भक्ति का अर्थ चढ़ावा चढ़ाना नहीं है भक्ति का अर्थ है सद्निष्ठा। उन के महान कार्यों में अपनी श्रद्धा व्यक्त करना और उन के द्वारा दर्शाए गए मार्ग पर चलना। पूजनीय के

सिद्धांतों एवं सूत्रों मे निष्ठा रख कर उन्हें जीवन में रचनात्मक रूप प्रदान करना ही सच्ची भक्ति है यही सच्ची पूजा है।

हकीम लुकमान का नाम तो आप ने सुना होगा ? भारत के इतिहास में अद्वितीय हकीम हुआ है। उस के नाम को ले कर कई लोकोक्तिया बन गई हैं। जैसे कह देते हैं—"वहम की दवा तो हकीम लुकमान के पास भी नहीं थी।" इस कहावत के पीछे यह मान्यता है कि लुकमान के पास सब रोगों की अचूक दवा थी (वहम को छोड़ कर) तो मैं उसी लुकमान की बात कर रहा हूँ। एक दिन वह संसार से चल बसा। अब यदि उस का पुत्र अपने पूज्य पिताजी की पूजा जी करने के लिए उनके चित्र को पूजने लगे, खील बताशे, पूरी कचौरी, धूप, घृत बाती आदि अन्य सामग्रियों से प्रतिदिन वह आरती उतारा करे तो क्या वह उस पूजा के द्वारा हकीम लुकमान बन सकता है अथवा हकीम लुकमान की आत्मा प्रसन्न हो कर कुछ पुरस्कार दे सकती है ?

छोड़िये लुकमान के चित्र की बात। मान लीजिए लुकमान के शिष्य उस के द्वारा लिखित वे पुस्तकें ले लें जिन मे अचूक औषधिया लिखी है और वे उन्हें सामने रख कर प्रतिदिन उनकी आरती उतारा करें, और चढावे चढ़ाया करें तो क्या आप समझते हैं कि वे उन नुस्खों के ज्ञाता हो जायेंगे जो लुकमान की प्रसिद्धि के साधन थे, जिन से हकीम लुकमान, 'लुकमान बना ? कदापि नहीं।

सेठ की मृत्यु के बाद यदि उन के वही खाते ले कर उन के पुत्र पूजने लगें तो वही खाते वह ऋण अदा नहीं करेंगे जिन का हिसाब उन में लिखा है। अतएव हकीम लुकमान की वास्तविक भक्ति, उस के प्रति सद्‌निष्ठा का उपाय उस के द्वारा वर्णित ज्ञान को धारण करना है। सेठ जी के वही खाते ऋण नहीं अदा करेंगे सेठ के पुत्रों को उनके प[illegible]ने पड़े गे और उस में लिखे हिसाब

से लाभान्वित होना होगा।

इसी प्रकार किसी भी महापुरुष की पूजा उस के बताए मार्ग का अनुसरण है। अरिहन्त भगवान की पूजा का अर्थ है उन के द्वारा दिखाए मार्ग पर चलना। रोटी २ रटने से पेट नहीं भरता और न रोटी पर चढ़ावा चढ़ाने से ही क्षुधा तृप्ति होती है। अतः पूज्य के प्रति श्रद्धा प्रगट करने का एक मात्र उपाय है उस के जीवन के सत्य का स्वीकार करना उस के अमर सिद्धांतों को अपने जीवन में उतारना और यही है उस की भक्ति अथवा पूजा। जो व्यक्ति पूज्यनीय के शरीर, रूप चित्र अथवा उन से सम्बन्धित अन्य वस्तुओं को न पूज कर उस के आदर्शों में निष्ठा रखते हैं और उन पर अमल करने का भरसक प्रयत्न करते हैं वे ही उस के पुजारी हैं। सद्‌निष्ठा और मन वचन कर्म से आदर्शों की पूर्ति ही सम्यक पूजा है। असम्यक पूजा वास्तव में पूजा का ढोंग मात्र है।

मैं अपनी इन बातों से किसी का खण्डन या मण्डन करने का विचार नहीं रखता बल्कि पूज्य पूजा और पुजारी की व्याख्या करना ही मेरा उद्देश्य है। मैं समझता हूँ कि अब हमारे प्रश्न का उत्तर काफी स्पष्ट हो गया है।

अब मैं इसी विषय से सम्बन्धित कुछ अन्य प्रश्नों की ओर आता हूँ। पूज्य कौन है पूजा किसे कहते हैं और पुजारी कौन है? इस सम्बन्ध में लोग प्रायः भूल करते हैं अतएव पूजा के नाम पर कोई भी तुच्छ पूजा में सम्मान पाने लगता है और जिस किसी की भी पूजा कोई करता है लोग उसे पूज्य मान लेते हैं। वास्तव में पूज्य पूजा और पुजारी का व्यावहारिक रूप कुछ विकृत कर दिया गया है। वरना पुजारी वास्तव में साधक होता है, पूजा साधन होती है। और महान बनने के लिए कभी भी चढ़ावा और दूसरे प्रचलित पूजा के उपाय साधन नहीं बन

सकी। मैं चाहता हूँ कि लोग सम्यक् पूजा करें, सच्चे पुजारी बनें और पूज्य को खिलौना न बनाएं। व्यवहारिक रूप अपने उद्देश्य का सही रक्खें तभी सत्य की प्रतिष्ठा हो सकती है। महात्मा गाधी कहा करते थे—

'पवित्र लक्ष्य की प्राप्ति के साधन भी पवित्र ही होने चाहिए। अपवित्र साधनों से हमे पवित्र लक्ष्य की प्राप्ति नहीं हो सकती।'

परन्तु लोगो को न जाने क्या हो गया है, गाधी जी के पुजारी बनने की बात तो करते हैं, पर सिवाये उन का नाम रटने और उन के चित्र लगाने, बुत बनाने और अपनी बात के साथ गाधी जी का नाम जोडने के और कोई काम नहीं करेंगे। ऐसा कोई काम करने की वे सोचते ही नहीं जिस से प्रगट हो कि वे वास्तव में गाधी जी के पुजारी हैं। पूजा और पुजारी का जो रूप विकृत हुआ है उसी का कुछ प्रभाव उन पर भी पडा है। वातावरण का तो प्रभाव होता ही है।

उलटी गगा बहाना इसे ही तो कहते हैं. लोग गाधी के पुजारी नहीं बनेंगे, गाधी का स्थान लेने का प्रयत्न करेंगे। भगवान् की पूजा करने चलेगे और पूज्य बनने का प्रयत्न करेंगे। आपने पुजारियों को पूज्य बनते देखा ही होगा। तीर्थ स्थानों में जाइये। एक दिन मन्दिरों मे पुजारी के समान प्रवेश करने वाले मठाधीश हो गए अब देवता अपनी जगह हैं और यह पूज्य अपनी जगह। लोग भगवान् को पूजें या इन पूज्य मठाधीशों को यही एक झंझट हो जाता है। बल्कि बात सीधी यह हो जाती है कि पूज्य तो रक्खे रह जाते हैं, और पुजारी की पूजा होने लगती है। पूज्य बनने के शौकीन लोग धार्मिक तथा सामाजिक, सभी क्षेत्रों में पाये जाते हैं। अफ़सोस यह कि लोग नहीं जानते कि वे क्या कर रहे हैं।

पूज्य बनने की इच्छा की यह छूत की बीमारी मनुष्यों से

चलती पूजा तक पहुँच गई। फूल सोचने लगे शताब्दियों से हम ही चढ़ते हैं पत्थर पर। हम ने ऐसा कौन सा अपराध किया है कि पत्थर की पूजा हो और बलि चढ़ें हम। फूलों के अन्दर विद्रोह की चिनगारी फैल गई और सब ने तय कर लिया कि चाहे जो हो अब पत्थर पर नहीं चढ़ेंगे पत्थर नहीं पूजेंगे। निश्चय हो गया और रूठ कर बैठ गए पुष्प नहीं गए चढ़ाने में। पत्थर ने सोचा मामला क्या है पुष्प नहीं आये शताब्दियों से चला आ रहा चलन आज क्यों टूटा। जरूर दाल में काला है। पत्थर ने सोचा चलो स्वयं ही चल कर पता लें आखिर यह हड़ताल क्या है? क्या मांग है?

पत्थर ने जा कर पूछा। फूलों ने कहा — जमाना बदल गया है अब हम नहीं आयेंगे तुम्हारी पूजा को।

पत्थर ने कहा— अच्छा तो तुम नहीं चाहते पूजा को आना तो हम तुम्हारी पूजा करने आ जाया करेंगे। हम न्यौछावर हो जाया करेंगे तुम पर।

फूल बड़े प्रसन्न हुए सुन कर। विजय के मद में चूर थे कि पूजा का समय हो गया और लगे पत्थर चढ़ने। अभी एक दो पत्थर ही चढ़े थे कि पुष्प चिल्लाये— नहीं नहीं हमें नहीं चाहिए पूजा। हम ही पूजा करेंगे। बस पत्थर भाई पूज्य तुम ही अच्छे हो।

फूलों ने चाहे जाकर सही रास्ता पकड़ लिया मैं पूछना चाहता हूँ सदियों से ठोकर खा रहा है मानव क्या वह सुपथ पर नहीं आयेगा। पुजारी से पूज्य बनने की चाह उस को ले डूबेगी।

चातुर्मास }
पटियाला }
१८—७—५४

अपने आप को पहचाना

भिन्न २ वृत्ति और प्रकृति के लोग मेरे पास आते हैं उन में जैनी भी होते हैं और अन्य मतावलम्बी भी। कोई दर्शनार्थ आता है कोई कुछ जानने। आप लोग भी प्रतिदिन यहा आते हैं मेरी बात सुनते हैं। मैं पूछता हू आप सब लोग क्यों आते हैं? अपना घर, मित्र दुकान, काम धन्धा छोड़ कर चले आते हैं साधु के पास। यहा आप को क्या मिलता है? आप कहेंगे साधु के दर्शन करते हैं, उन की बात सुनते हैं, बडे ज्ञान की बातें होती हैं कुछ जानकारी बढती है, कुछ अपनी भूलें ज्ञात होती हैं। आदि आदि। यही हैं आप के उत्तर?

किन्तु मैं जानना चाहता हूँ मूल को। आप का कौन पकड लाता है यहा? आप में से कितने ही लोग होंगे जो दूसरे के मकान पर बिना काम नहीं जाते? कोई काम बिना किसी कारण नहीं करते आप बेकार तो नहीं? जरूर आप के आने के पीछे कोई कारण होगा। आप की जिज्ञासा किसी कारण से ही उत्पन्न हुई होगी। उस का मूल क्या है?

आप अपने को टटोलें और सोचें अपने इस काम का कारण। कभी आपने सोचा? आप ने नहीं सोचा होगा, मैंने सोचा है।

ऐसे कितने ही लोग मेरे पास आया करते हैं, कहते हैं—
"महाराज ! पूजा पाठ किया, भगवान् को भोग भी लगाया, भिखारियों की झोली भी भरी। सयानों के तावीज भी बांधे, जन्तरी में विज्ञापन पढ़ा था कि जो चाहोगे वही मिलेगा, वह तान्त्रिक अंगूठी भी मंगा कर देख ली। महन्त की समाधि पर मनौती भी मनाकर देखी तीर्थ यात्रा भी की, जो जो किसी ने बताया वही किया। बीस बाईस साल हो गए हमें तो पापड बेलते, हमारे पल्ले तो कुछ पड़ा नहीं। जो जितना बेईमान है, भगवान, धर्म किसी को नहीं मानता वह तो उन्नति कर रहा है और अपना तो बस चल रहा है जीवन न जाने कैसे ? महाराज मामला क्या है, क्या नसीब ही खोटा है हमारा ? आप ही बताईये करें तो क्या ?'

दिल खोल कर वे बात करते हैं। और चाहते हैं कि मैं उन्हें कोई ऐसा उपाय बता दूं कि वे उस तान्त्रिक उपाय को सम्भाले और हो जायें सुखी दुःख दूर हो जायें उन के। एक की बात नहीं जो साधु के पास जाते हैं वे किसी भी रूप में सन्तोष सुख और आनन्द की खोज में जाते हैं।

क्या बात है कि वे अन्त में साधु के पास जाते हैं ? मनुष्य जब बीमार होता है तो आरम्भ में पास पड़ोस के लोग उसे परामर्श देते हैं, अमुक चीज खाओ आराम हो जाएगा। उस से आराम नहीं होता तब वह दूसरे से पूछता है और जब रोग बढ़ने लगता है तो जाता है डाक्टर के पास। क्योंकि जानता है कि डाक्टर के पास दवा है और अनुभव भी।

डाक्टर शारीरिक रोगों के चिकित्सक हैं और साधु आध्यात्मिक [illegible]कित्सक। एक बात मैं आप से पूछूं भला बताइये तो [illegible] के पास जायेंगे तो फीस देनी पड़ेगी, वह पुस्तक ही [illegible]यों नहीं खरीद लाते जिस में औषधि लिखी होती है।

एक रोग की चिकित्सा के लिए पुस्तक खरीदें। और काम चला सैकड़ों रोगों में। एक पुस्तक एक परिवार के लिए पर्याप्त है। डाक्टर को बार २ फीस देने से तो अच्छा है वह पुस्तकें स्वयं ही न खरीद लें। लोग जानते हैं कि चिकित्सा सम्बन्धी पुस्तकें भी मिल सकती हैं पर वे स्वयं पुस्तक न खरीद डाक्टर को फीस ही देना पसन्द करते हैं। भला किस लिए ? पुस्तकें रोग की औषधि तो बता सकती है पर रोग की चिकित्सा के लिए केवल औषधि ज्ञान ही पर्याप्त नहीं है चिकित्सा विज्ञान का पूर्ण ज्ञान अनुभव और रोग के निदान में प्रवीणता यह है चिकित्सा के लिए आवश्यक बातें। अतएव लोग डाक्टर के पास जाते हैं क्योंकि यह सब गुण उस में ही एकत्रित रूप में मिल जाते हैं।

चिकित्सा के लिए सर्वप्रथम निदान की आवश्यकता है किसी ने इसी लिए कहा है—

हकीमा वैद्य अच्छा है अगर तशखीश अच्छी हो।
इसमें मतलब है सेहत से मनफ़शा हो या तुलसी हो॥

यदि रोग की सही पहचान न होगी तो इलाज क्या खाक होगा ? इसी प्रकार आध्यात्मिक क्षेत्र में लोग ढूंढते हैं ऐसे केन्द्र को जहां निदान ज्ञान और अनुभव तीनों मिलें। वह मिलते हैं साधुओं के पास। अतः लोग दौड़ते हैं साधुओं की ओर। किसी को काम का रोग है तो किसी को तृष्णा का किसी का लोभ का मर्ज है तो किसी को वासना का। राग और द्वेष से तो सभी पीड़ित होते हैं। यह राग और द्वेष ही उन्हें ले जाता है साधुओं के पास। वे पीड़ित होते हैं कष्टों से दुःखों से दरिद्रता से। उन्हें ग्रन्थ मिल सकते हैं जिन से पीड़ाओं और मानसिक वेदनाओं से मुक्ति के स्वर्णिम उपाय लिखे होते हैं पर मंथ मुंह पर मुंह देकर शंकाओं का समाधान तो नहीं कर सकते। सब सन्ताप क्यों है इस का निदान तो आध्यात्मिक चिकित्सक के ही पास है।

तो चिकित्सक के पास रोगी पहुँच गया और अब वह अपनी बात बताता है। कहा २ उसने इलाज कराया। वह कहता है मन्दिरों में गया, धार्मिक ग्रन्थों का पाठ किया और इसी प्रकार इधर उधर भटकता रहा फिर भी कहीं दुःखों से छुटकारा नहीं मिला।

जब मुझ से कोई यह सवाल उठाता है तो मैं उसे विवेकानन्द के जीवन की एक घटना सुनाता हूँ।

काशी के एक बड़े मन्दिर के दर्शन करने के लिए स्वामी जी गए। उस मन्दिर में बन्दर बहुत थे। हृष्ट पुष्ट और निडर बन्दरों की सेना की सेना थी। जब स्वामी जी मन्दिर के दर्शन कर के लौट रहे थे, तो वह ऐसी गली से चले, जिस के एक ओर बहुत ऊंची दीवार थी और दूसरी ओर बड़ा तालाब। रास्ता था पतला सा। मन्दिरों के बन्दर ने निकल २ कर स्वामी जी को चारों ओर से घेर लिया। स्वामी जी हृष्ट पुष्ट वानर दल को देख बड़े घबराए। उन की घुडकियों से तो और भी भयभीत हो गए। आखिर भाग पडे जान बचाने के लिए। स्वामी जी का भागना था कि वानर दल भी पीछे २ भागा। आगे २ पुरुषोत्तम राम के भक्त और पीछे राम भक्त हनुमान का दल। बड़ी मुसीबत आई। स्वामी जी को बचने का कोई उपाय न सूझा। लाठी याद आई, पर वह तो हाथ में थी ही नहीं। एक व्यक्ति ने यह दृश्य देख लिया। उसने कहा स्वामी जी आप इन बन्दरों से डर क्यों रहे हैं? डट जाईये इन के मुक़ाबले पर।

भयभीत स्वामी जी बोले—"भाई हाथ में कुछ है तो नहीं, यह बन्दर हैं लिपट जायेंगे।"

उस व्यक्ति ने कहा—"स्वामी जी लाठी डण्डे की परवाह न कीजिए आप का भय ही तो इन का बल है। आप डट कर खडे तो हो जाईए एक बार। जितना आप डर रहे हैं, बन्दर भी मनुष्य

से डरना ही डरता है।

स्वामी जी को सहारा मिला। भागना बन्द किया और हो गए खड़े डट कर। भागता वानर दल भी रुका एक बार घुड़की दी, स्वामी जी तब भी नहीं भागे तब तो वानर दल के हौसले पस्त हो गए, वे निराश अपने केन्द्र को लौट गए।

स्वामी जी ने इस घटना से क्या निष्कर्ष निकाला वे कहते हैं—"मुसीबतों और दुःखों से मत घबराओ डट कर मुकाबला करो। अपनी शक्ति को पहचानो। पहाड़ सी दीखती मुसीबतें आप के रास्ते से स्वयं हट जायेगी।

मैंने विवेकानन्द के साथ घटित यह घटना क्यों सुनाई? जानते हैं आप इस में एक बात छिपी है और उसी बात में हमारी यह बात निहित है जिस पर मैं प्रकाश डाल रहा हूँ। क्या बात है यह? मनुष्य अपनी शक्ति को नहीं पहचानता मनुष्य अपने को नहीं जानता। वह अपने बारे में अन्धकार में है। और अपने बारे में चूंकि वह अन्धकार में है इसी लिए वह भगवान् के पीछे दौड़ता है भगवान के दर्शन उसे नसीब नहीं होते। सुख के लिए ठोकरें खाता है उसे सुख नहीं मिलता। आनन्द की खोज में वह सिर धुनता फिरता है आनन्द उसे नहीं दिखाई देता।

साधु के पास आप आए दुःख का कारण जानने और सुख की खोज में असफलता का रहस्य मालूम करने। साधु कहता है तुम रोगी हो तुम्हें क्षय है क्योंकि औषधि की खोज तुम वीरानों में जंगलों में शहरों में करते फिरे तुम नहीं जानते कि वह संजीवनी तुम्हारे पास है तुम उसे नहीं पहचानते इसी लिए भटकते आते रहे।

स्वामी राम तीर्थ कहते हैं—"जब तक अपने आप को स्वयं ईश्वर नहीं होगे दिल की तपन नहीं बुझेगी।"

'तो खुद हिजाबे खुदी ए दिल, अज मियां बर खेज।'

अर्थात्—अपना आवरण तू आप बना हुआ है अतएव ऐ दिल। अपने भीतर मे तू आप जाग।

यह आवरण दुःख का परदा है, आप के सामने दुःख है क्योंकि आप की नजरों पर परदा पड़ा है, आप अपने आपे को नहीं देख रहे। आप प्यासे हैं, पानी की खोज है और आप के अन्दर शीतल जल का सागर ठाठें मार रहा है।

परन्तु आखिर यह भटकाव कब तक?

'बर चेहरा-ए नकाब ताके,
बर चश्मा-ए खोर सहाब ताके॥"

"तेरे चेहरे पर परदा कब तक रहेगा, सूर्य को बादल कब तक ढकेगा।"

आनन्द की खोज में परेशान रहने वालो नदी के तट पर बैठ कर प्यासा रहने वाले का नसीब खोटा नहीं है उस की बुद्धि का खोट है। आनन्द ढूंढते हैं नाशवान पदार्थों मे आप उनके प्रति आसक्ति रखते हैं और जानते हैं आप की यही आसक्ति आप को कभी तृप्त नहीं होने देती। आप अपने को नहीं जानते, इस लिए वह सब बातें आप को दुःख मालूम होती हैं जिन का आप के दुःख सुख से कोई भी वास्ता नहीं। आप उस चोर की भांति भटक रहे हैं जो सब कुछ टटोलता है और हीरा उस के पास रहने पर भी उसे नहीं मिलता।

आप ने यह दृष्टान्त तो सुना ही होगा कि एक सेठ एक बहुमूल्य हीरा बेचने के निमित्त कलकत्ते चला। दिल्ली से ही एक चोर जेब कतरा साथ हो लिया। उसे मालूम था कि सेठ के पास हीरा है और है बड़ा मूल्यवान्। सेठ के साथ ही चोर भी जा बैठा गाड़ी में। सेठ भाप गया उस की भाव भंगिमा देख कर कि जेब कतरा है और उसी के पीछे लगा है। लम्बा सफ़र है अतः कहीं

भी नजर चूकी ता बेटा नहीं। उसे एक तरकीब सूझी चोर को दो पैसे दे कर बोला एक पान तो ला दीजिए मेरे लिए। चोर तो उन से परिचय बढ़ाना चाहता ही था सेवा का अवसर मिला तो हर्ष पूर्वक डिब्बे से उतर कर प्लेटफार्म पर पान लेने चला गया। सेठ ने चुपके से हीरा निकाला और चोर के बिस्तर में छुपा दिया। चोर ने पान लाकर सेठजी को दे दिया और अपनी सीट पर बैठ गया। अब लाला जी तो थे निश्चिन्त पान खाकर ठाठ से बर्थ पर लेट गए और चोर अवसर की खोज में लगा। ज्योंही सेठ ने खर्राटे भरने आरम्भ किये चोर ने उठकर धीरे से उनकी सारी जेब टटोली। पर हीरा न मिला। अब चोर बड़े चक्कर में था उसे मालूम था लाला के पास हीरा है पर मिला कुछ नहीं। कलकत्ता के आधे सफर तक ही उसने लाला का सारा सामान टटोल लिया हीरा तो भी न मिला।

जब ट्रेन [Train] कलकत्ते के पास पहुँची एक स्टेशन पूर्व ही सेठ ने उस को आते लिए और कहा नैतिक धोखे चले तो ले लीजिए। चोर ज्योंही प्लेट फार्म पर उतरा लाला ने हीरा उसके बिस्तर से निकाल कर अपनी जेब में रख लिया। कलकत्ते पहुँच कर स्टेशन से उतर लाला ने टैक्सी की जौहरियों के बाजार के लिए। चोर देख रहा था चकित रह गया सोचने लगा—"लाला के पास तो कहीं है ही नहीं फिर जौहरी बाजार क्यों जाता है?"
लाला से उस ने पूछ ही तो लिया— "लाला जी जौहरी बाजार जा कर क्या कीजिएगा?"

लाला ने जेब से हीरा निकाल कर उसे दिखाते हुए कहा—"अपने पास यह एक हीरा है इसे ही बेचने जाना है।"

अब तो चोर बहुत परेशान हुआ बड़ा विस्मय था उसे। मारे भ्रम की शंका प्रगट करते हुए उसने कहा—"लाला जी दिल्ली से कलकत्ता तक की यात्रा में एक बार नहीं सौ बार आप

के मारे सामान की और आपकी तलाशी ली पर मुझे यह हीरा नहीं मिला। अब तो आप बता दीजिए कहा रक्खा था छुपा कर आप ने ?"

सेठ ने हंस कर कहा—"मूर्ख! तूने सब कुछ टटोला पर अपनी तलाशी तो तू ने ली ही नहीं। हीरा तो तेरे ही बिस्तर में रक्खा चला आया।"

यही बात है आप के साथ भी। आप जिस हीरे की खोज मे हैं, वह कहीं और नहीं आप ही के पास है, तनिक अपने ज्ञान चक्षु को खोलिए, अपने भीतर झांकिए। बाह्य द्रष्टा की अपेक्षा अन्त द्रष्टा बनिए। आप को आनन्द का रहस्य स्वयमेव ज्ञात हो जाएगा।

कस्तूरी मृग की नाभि में ही होती है पर वह अन्दर से आ रही कस्तूरी की गन्ध पर मस्त हो कर उस की खोज में सारे जगल में छलाग लगाता फिरता है, वन की खाक छानता है, वह नहीं जानता कि वह गन्ध जो उसे मस्त बना रही है और कहीं नहीं उसी की नाभि में विद्यमान है। मृग के समान आप भी भूलते हैं आनन्द की खोज करते हैं बाहर, भीतर नहीं देखते। आप स्वय है क्या ? यह आप नहीं जानत। जो सुख के लिए तावीज बाटते हैं, तान्त्रिक अंगूठिया बेचते हैं, उन को रोग का निदान नहीं आता। वे नाडी देखना नहीं जानते और जब उन्हें रोग का निदान ही नहीं ज्ञात तो वे दवा क्या खाक देंगे ?

आप अपने को नहीं जानते, इस लिए दु खी हैं। आप अपने को जब पहचान जायेंगे विश्वास रखिए दु ख के परदे आप की नजर से हट जायेंगे। राम तीर्थ इसी बात को अपने शब्दों मे समझाते हुए कहते हैं—

"अनन्त ही परमानन्द है। किसी अन्तवान् में परमानन्द नहीं होता। जब तक आप अन्तवान् हैं तब तक आप को परमानन्द, परमसुख नहीं मिल सकता। अनन्त ही परमानन्द

है केवल अनन्त हो परमात्मन् है। आप के भीतर ही मस्ती। मैं न है आप के अन्दर ही दिव्यामृत का महासागर है। इस अपने भीतर ही ढूंढिए अनुभव कीजिए। मान लीजिए कि वह प्यार मालिर है।

अपनी बात का और साफ करते हुए वे कहते हैं—

जो ऐसा मानते हैं कि उन का आनन्द सुख विशेष परिस्थितियों पर अवलम्बित है वे देखेंगे कि सुख का दिन सदा उन से दूर ही दूर हटता जाता है। मृगिया वे तालाब के समान निरन्तर उन से दूर भागता रहता है।

और आप जो सुख के मूल हैं और सुख आप को ढूंढ नहीं मिल रहा उन्हीं में से हैं जो न अपने को जानते हैं और न सुख पहचानते हैं।

जानते हैं आप अपने को? तो बताइये आप कौन हैं? क्या आप जैन हैं? आप का उत्तर है कि आप जैन हैं। और पास वाले भाई वैष्णव हैं सनातनी हैं हिन्दू हैं यही हैं आप लोगों के सोचने के तरीके। कोई कहता है मैं जैन हूँ कोई अपने को हिन्दू कहता है कोई आर्य तो कोई मुसलमान। पर मैं यदि आप से यह कहूँ कि आप न जैन हैं न हिन्दू, न आर्य न सिक्ख और न मुसलमान इन से भिन्न हैं तो आप इस स्वीकार करेंगे? पर यदि मैं कहूँ कि आप यह सब हैं तो आप क्या इसे पसन्द करेंगे? बात कुछ टेढ़ी है। मैं इसे समझता हूँ। जो कहता मैं हिन्दू हूँ उस से कोई पूछे आप के किस ग्रन्थ में लिखा है हिन्दू जाति का नाम। वेदों तक में तो हिन्दू शब्द ढूंढे मिलता नहीं। वास्तव में प्राचीन भारत वासियों को सिन्धु के नाम से पुकारा जाता था क्योंकि हमारा राज्य सिन्धु से ले कर कन्याकुमारी तक फैला था और हमारे पूर्वजों की बस्तियाँ सिन्धु नदी के किनारे थीं। परन्तु अरब से आने वालों ने सिन्धु को

हिन्द में परिवर्तित कर दिया। हिन्दू सिन्धु का अपभ्रंश है। शब्द बदल जाया करते हैं, जैसे कि मारवाड के कुछ स्थानों पर 'स' को 'ह' बोला जाता है।

इन क्षेत्रों की बोली का एक वाक्य मुझे याद है—

'लाला हुआ हूतली दे, हक्कर की बोरी हीमह्या'

अर्थात्—'लाला मूआ सुतली दे शक्कर की बोरी सीमस्या।' इसी प्रकार बोलियां भिन्न हो जाने पर शब्दों के रूप बदल जाते है, हिन्दू भी इसी तरह बदला हुआ शब्द है पर हिन्दू भी एक अर्थ देता है—

हिं = अर्थात् हिंसा

दू = दूर रहने वाला

हिंसा से दूर रहने वाला हिंदू हुआ पर वास्तव में हमारा शास्त्रीय नाम आर्य है। आर्य श्रेष्ठ को कहते हैं, जैन का अर्थ होता है यतना से काम करने वाला। सिक्ख का अर्थ है शिष्य और मुसलमान का तात्पर्य है मुसल्लिम उल ईमान अर्थात् जो ईमान का पूरा हो। अब आप इसे यूं समझिए कि हिंसा से दूर रहने वाला ही आर्य हो सकता है, यत्न पूर्वक काम करने वाला ही श्रेष्ठ हो सकता है, बिना गुरु का शिष्य हुए न यतना से काम करना आएगा और न श्रेष्ठता का गुर मालूम होगा और बिना ईमान का पक्का हुए न श्रेष्ठता का पद मिलेगा और न ही हिंसा से दूर रह सकेगा। अतः आप जो भी अपने कहें अर्थानुसार अन्य संज्ञाओं को अपने लिए प्रयुक्त होने से कैसे इन्कार करेंगे? तात्पर्य यह है कि आप यदि जैन, हिंदू, सिक्ख, आर्य और मुसलमान की ही किसी संज्ञा के आधीन अपने को बांधने का चाव रखते हैं तो फिर आप इन सब संज्ञाओं से पुकारे जा सकते हैं और वास्तव में आप इन सब में से कोई एक भी नहीं। क्योंकि आप जो हैं उस पर किसी जाति का लेबिल

नहीं लगा और न ही लगाया जा सकता है।

आप अपने को मालिक शरीर समझते हैं और उसकी आवश्यकताओं को अपनी आवश्यकता उस की मांग को अपनी मांग उसके दुःख को अपना दुःख और उसके सुख को अपना आनन्द। पर आप नहीं जानते कि वास्तव में आप शरीर नहीं शरीर के भीतर बसे आत्मा हैं, जिस का आप के इन झगड़ों से कोई मतलब नहीं जिन का आप सुख मानते हैं।

एक विद्वान कहता है

"सोना और चान्दी खरीदने के लिए ही ठीक है, बस इस से अधिक उन का उपयोग नहीं। आनन्द इन भौतिक पदार्थों की भर्ती में नहीं है अतः यह मान चान्दी से कदापि किसी प्रकार मोल नहीं लिया जा सकता।"

मैं आप से एक बात पूछता हूँ एक व्यक्ति की अंगुली कट जाती है क्या कहता है वह? मेरी अंगुली कट गई यह तो नहीं कहता मैं कट गया। अतः यह मान लेना पड़ेगा कि जिस की अंगुली कटी है वह अंगुली न हो कर कुछ और है। इसी प्रकार जिस शरीर के लिए आप सोना चान्दी लादते फिरते हैं आप वह नहीं हैं वरन् कुछ और हैं। अर्थात् आप शरीर नहीं आत्मा हैं। शरीर का सुख क्षणिक है। वह अनन्त नहीं सनातन नहीं। आप स्वयं सनातन हैं। अनन्त हैं। अनन्त का सुख भी अनन्त ही होता है जो सुख नश्वर है वह नाशवान् का सुख ही हो सकता है अनन्त का नहीं। अतः वह सुख जो वास्तव में आनन्द है परम आनन्द वह आप को सांसारिक पदार्थों से नहीं मिलेगा। उस से आप तृप्त और सन्तुष्ट भी नहीं हो सकते। सारे संसार का धन चाहे एकत्रित कर के दे दिया जाए तो भी आप की चाह पूर्ण न होगी। हाँ आंख मूंद लीजिए धन चान्दी की ओर से अपने दर्शन कीजिए अपनी आत्मा

में, फिर सोचिए कहा है वह धन धान्य का मोह जिस के पीछे आप दीवाने हैं।

इसी लिए मैं कहता हूँ आप ने अपने को नहीं पहचाना अत आप सुख के लिए मारे २ फिरते हैं। आध्यात्मिक चिकित्सक आप को कहता है कि आप अपने को नहीं पहचानते यही है रोग का मूल। अपने को पहचान लीजिए रोग समाप्त हो जाएगा। स्मरण रखिये आप आत्मा हैं और आत्मा का धन धान्य से कोई सम्बन्ध नहीं।

पटियाला }
चातुर्मास } १६—७—५४

आनन्द मिल सकता है पर कैसे?

कल जो बात मैंने कही थी वह थी अपने आप को पहचानने की आवश्यकता की बात। प्रसंग यह था कि सुख क्यों नहीं मिलता। आज मैं आप को एक और बात बताता हूँ। आप को सुख मिले तो कैसे? आज से पहले भी मैंने कुछ ऐसी बातें कही हैं जो इस प्रसंग से सम्बन्धित हैं। परन्तु दूसरे विषय में कही गई वे बातें सम्भव है आप के मन में अपना पैर न जमा सकी हों।

आपने उर्दू के एक शायर का प्रसिद्ध शेर सुना होगा—

बुलबुल ने आशियाना चमन से उठा लिया
उस की बला से बूम बसे या हुमा रहे।

लोग अनेक अवसरों पर इस पद्य का प्रयोग करते हैं। इस का वास्तव में अर्थ क्या है? जब तक बुलबुल चमन में है तब तक उस की चाह रहती है चमन आबाद रहे इस में बहार रहे इस के पौधे फूलें फलें। चारों ओर सुन्दरता बिखरी रहे और ऐसा कोई पक्षी इस में न आए जो चमन के सौंदर्य को हानि पहुँचाए अथवा चमन के उजड़ने का कारण बने। परन्तु जब वह चमन से अपना घोंसला उठा कर चल देती है, तो उस के मोह

के बन्धन टूट जाते हैं और फिर उसकी बला से चाहे चमन में बहार रहे या न रहे। उस में उल्लू बोले अथवा वह सुन्दर पक्षी जिस के बारे में कहावत है कि जिस पर उस की छाया पड़ जाती है।

बुलबुल चली जाती है और चमन अपने स्थान पर रह जाता है। इसी प्रकार आप एक मकान किराये पर लेते हैं। जब तक रहते हैं उस का उपयोग करते हैं, उस के फर्श, छत, खिड़की, अलमारी और दरवाजों का मन चाहा प्रयोग करते हैं। पर जब वह मकान आप को दुखदायी प्रतीत होने लगता है, आप का उस में गुजारा नहीं चलता, या मकान मालिक मकान छुड़वाना चाहता है अथवा अपने लिए आप कोई और मकान खोज लेते हैं, तो उसे खाली कर के आप चले जाते हैं। मकान अपने स्थान पर रह जाता है, उस की खिड़कियां, दरवाजे, सहन, अलमारियां सब वहीं रह जाती हैं। मकान का कोई अंग आप के साथ नहीं आता है। इसी प्रकार आप की देह है, यह एक घोंसला है, किराये का मकान है, एक सराय है आप आये, इसमें रहे और चल दिए। जब चल दिए तो फिर आप पीछे फिर कर नहीं देखते कि क्या हो रहा है आप के उस घर का जिसे आप ने बड़े यत्न से सजाया था।

एक दृष्टांत है, वैरागी और वेश्या का। तनिक उस पर ध्यान दीजिए।

एक वैरागी और एक वैश्या पड़ौसी थे। उन दोनो के मकानों के बीच बस एक दीवार थी और उस दीवार में भी एक दरवाजा था। वैरागी अपने ध्यान में मग्न रहता और वैश्या अपने शरीर के व्यापार में। सतीत्व की बिक्री की बात क्यों कहूँ, सतीत्व तो एक ही बार विचलित होने पर नष्ट हो जाता है, अतः वैश्या के पेशे को शरीर का ही व्यापार कहा जा सकता है। हां, तो कभी २

बैरागी की दृष्टि वेश्या की ओर चली जाती। जब वह अनेक शृंगारों से युक्त वेश्या का किसी पुरुष के साथ प्रेमानुराग का नाटक रचा देखता तो नाटक को सत्य समझ कर उस की ओर आकर्षित हो जाता। बैरागी की तपस्या में रस तो विघ्न पड़ने लगा। वह उस की ओर आकर्षित तो था पर बैरागी था, लोगों में उस की बड़ी प्रतिष्ठा थी अतएव मन में वेश्या के प्रति आसक्ति का भाव जागृत होने पर भी वह सिवाय उस की ओर ललचाई दृष्टि डालने के और कुछ न कर सकता था।

एक बार वेश्या को अपनी ओर आकर्षित करने के लिए ही उस ने वेश्या से कहा— "रात दिन पाप कमाती हो कभी अपना परलोक सुधारने के लिए भी कुछ कर लिया करो।"

वेश्या शरीर अवश्य बेचती थी पर उसे अपने पेशे से हार्दिक घृणा थी वह बैरागी का बाह्य संयमी रूप देख कर उस के प्रति श्रद्धा के भाव रखती थी और सोचा करती थी— "हाय! मैं कितनी पापिन हूँ। इतना घृणित कार्य मैं कर रही हूँ यह जीवन तो नारकीय पड़ा ही इस के पापों का फल न जाने मुझे कितना भयंकर भोगना पड़ेगा।" अब जब बैरागी ने परलोक सुधारने की बात कही तो श्रद्धापूर्वक उस ने पूछा— "आप ही बताइये मैं क्या करूं?"

बैरागी बाबा— "शरीर तुम्हारा है चाहे जैसे ही पापाचार में लिप्त हो तुम अपनी आत्मा को उस से निर्लिप्त रक्खो। सदा भगवान में रुचि रक्खो किसी जीव का मत सताओ किसी की चोरी मत करो किसी जीव को मोह में अपने को मत फंसाओ। मन को पवित्र रक्खो। खाली समय में भगवान का भजन किया करो।"

इसी प्रकार की कुछ बातें बैरागी ने उसे बताईं। भक्तिपूर्वक वह उन सब बातों पर अमल करने लगी जो बैरागी ने बताई थीं, जो उस के पास आता था उस का स्वागत तो करती और शरीर

भी बेचती पर साफ़ कहती कि उस का प्रेम पैसे का सौदा है, वह ग्राहक को फंसाने की अपेक्षा वैश्यागमन के प्रति उस के हृदय मे घृणा भी उत्पन्न करती।

कथाकार कहता है इसी प्रकार वह पवित्र हृदय वाली अपवित्र नारी जीवन भर अपने संकल्पों पर अडिग रही, पर वैरागी, जीवन पर्यन्त उस के रूप को ललचाई दृष्टि से देखता रहा। वैश्या एक दिन मर गई और भाग्यवश उसी दिन वैरागी भी चल बसा।

वैश्या की आत्मा को स्वर्ग के दूत अपने माथ ले जा रहे थे और वैरागी की आत्मा को नरक मे ले जाया जा रहा था, वैरागी की आत्मा को यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ, उस ने दूतों से पूछा-'क्यों जी। जो जीवन भर पाप कमाती रही उसे स्वर्ग में लेजा रहे हो और मैं सारे जीवन वैरागी रहा तब भी मुझे नरक ले जाते हो, यह अन्याय नहीं तो और क्या है ?' दूतों ने कहा—'नीचे की ओर देखो।'

वैरागी ने नीचे की ओर देखा। क्या देखता है। वैरागी का शरीर फूलों से लदा है और हजारों लोग शव के साथ चल रहे हैं, जय जयकारों से सारा नगर गूंज रहा है। दूसरी ओर नगर से बाहर जंगल मे पड़ा है वैश्या का शरीर, और उसे चील कौवे नोच २ कर खा रहे हैं।

वैरागी को यह देख कर और भी आश्चर्य हुआ। दूतों ने उसे बताया—"वैरागी! जिस ने जैसा किया वैसा ही फल पाया। तुम्हारा शरीर वैरागी था अत उस पर लोगों ने फूल चढाये। आत्मा कलुषित थी इस लिए नरक जा रही है। और वह वैश्या शरीर से पाप करती थी उसे चील कौवे खा रहे हैं आत्मा से वह पवित्र थी अत स्वर्ग जा रही है। वैश्यावृत्ति तो उसे पूर्वजन्म के कर्मों से मिली थी, पूर्वजन्म का उस ने कर्म

फल भोगा वैरागी के रूप में और तुम्हारे बताए मार्ग पर चल कर उस ने अपना परलोक सुधार लिया। तुम ने जो मन्त्र दिया उसे उस ने श्रद्धापूर्वक अपने मन में लगाया उसे आत्मिक रूप में अपने पशु से घृणा रही और तुम के वैरागी के रूप में भी कामासक्त रहे। तुम शरीर नहीं आत्मा हो। अब तो समझे रहस्य।"

कथाकार ने इस कथा के द्वारा एक बड़ा उपदेश दिया है आप आत्मा हैं शरीर नहीं वह जैसा करती है वैसा फल पाती है। संसार में शरीर के किए का फल मिलता है और मृत्यु के उपरांत आत्मा के कर्मों का फल मिलता है। आप जिस स्थिति में हैं उस में आप के पूर्वजन्म ने आप को डाला है पूर्वजन्म के कर्मों का फल आप भोग रहे हैं और वह भोगना ही पड़ेगा। अब तो प्रश्न यह है कि आप परलोक सुधारने के लिए क्या करते हैं? आप सुख चाहते हैं तो शरीर को सुखी बनाने की चिन्ता छोड़ कर आत्मा को सुखी बनाने की चिन्ता कीजिए। संसार में रह कर भी आत्मा को उस में लिप्त न होने दें। यह है इस कथा का सार।

आप आत्मा हैं और आप का वर्तमान रूप किसी दिन छोड़ देना होगा यह घर आप का बदलना ही पड़ेगा अतः अपनी आत्मा का तार इस पर अर्थात शरीर से न जोड़ कर आप परमात्मा से भगवान से जोड़िए। आप को आनन्द मिलेगा यह आनन्द स्थायी होगा।

परमात्मा और आप की आत्मा के बीच में एक दीवार है। वह दीवार है अज्ञान की, आप उसे हटा दीजिए परमात्मा के दर्शन हो जायेंगे अथवा आप को परमानन्द मिल जाएगा।

परमानन्द से आप की आत्मा अलग किए रखने का कारण है राग और द्वेष। इन दो हाथों से आत्मा बन्धी हुई है।

आप ने सुना होगा कुछ लोग शव को गगा मे वहा देते हैं उसे जल प्रवाह करना कहते हैं। दो घड़ों में रेत भर कर शव के साथ नाथ देते हैं, शव पानी मे नीचे वैठ जाता है। आत्मा के साथ भी दो पत्थर बन्धे हैं, जो आत्मा को भवसागर मे डुवाए रहते हैं।

आत्मा जब तक सामारिक मोह मे डूबी है, राग द्वेप के भारी पत्थर उस मे बन्धे हैं, तब तक हमारी भावना क्या है ?

अय निज परोवेति गणना च लघु चेतसाम्

अथवा

इमं च मे अत्थि इमं च नत्थि

यह मेरा है यह मेरा नहीं है। यह मेर तेर की भावना ही सब प्रकार के दु खों को जन्म देती है। एक व्यक्ति गगा में डुबकी लगाता है, जब तक वह पानी से ऊपर आता है, मैकडों मन जल उस के ऊपर से निकल जाता है पर उसे उसके भार का अनुभव तक नहीं होता। परन्तु जब वही व्यक्ति एक घडा जल कधे पर रख कर चलता है और कोई व्यक्ति उसे रोक कर कुछ बात करना चाहता है तो कहता है—"देखते नहीं हो कधे पर भरा घडा रक्खा है। मैं तो बोझ से दवा जा रहा हूँ और तुम्हें वातें सूझ रही हैं।"

क्या कारण है कि वह मैकडों मन पानी जो उस के ऊपर से गुजर गया, उसे भार नहीं मालूम हुआ पर उसी जल का तनिक सा भाग उस ने अपने घडे में भर लिया तो भार वन गया ? वस यही वात तो है कि घडे मे भरे जल के साथ 'मेरे' की संज्ञा जुड गई। उस के साथ स्वार्थ, मोह और स्वामित्व ने जुड कर उस के भार का एहसास करा दिया।

भोगों मे लिप्त रहने पर ही सांसारिक सुखों की वस्तुओं का मोह रहता है। मेरे तेरे का प्रश्न रहता है और मेरा कम

लोग कैसे जुदा हो जाते हैं राग द्वेष की कैंची के द्वारा, इस के लिए मुझे एक दृष्टांत याद आ गया। उसे मैं आप के सामने रखता हूँ।

दो भाई थे, सगे भाई। आपस में था गहरा भ्रातृ स्नेह। दोनों प्रेम के साथ रहते और एक ही दुकान पर बैठते। कभी उन्हें किसी बात पर लड़ते झगड़ते नहीं देखा था। दोनों के परस्पर विश्वास और परिश्रम के कारण व्यापार में दिन दूनी रात चौगनी उन्नति हो रही थी। लोग आश्चर्य चकित थे, उन का भ्रातृ प्रेम देख कर। भाई भाई पर प्राण देता था किसी को कुछ हो जाए तो दूसरा मानो दिल निकाल कर रख देता उस के लिए। मिलता है कहीं देखने को आजकल भाईयों में ऐसा स्नेह ? नहीं, पर उन में था।

एक दिन की बात है छोटा भाई घर से खाना खा कर लौटा और बड़े भाई को भोजन करने के लिए उस ने घर जाने को कहा। दोनों भाईयों के एक २ पुत्र था। उस समय वे दोनों ही बालक दुकान पर थे, घर की ओर जाते हुए बड़े भाई के साथ दोनों बालक भी चल पड़े। सामने पटरी पर बैठी कुजड़ी आम बेच रही थी। बालक मचल पड़े आम लेने के लिए। बड़े भाई ने पाव भर आम खरीदे, पाव भर में दो आम मिले, उन एक छोटा था और एक बड़ा। उस का अपना लड़का बाईं ओर था और छोटे भाई का लड़का दाईं ओर पर भाग्यवश बड़ा आम दाहिने हाथ में और छोटा बाये हाथ में आगया था यदि वह ऐसे ही आम बालकों को देता है तो भतीजे को बड़ा और अपने पुत्र को छोटा आम मिलता है, अत उस ने एक चालाकी की। दाया हाथ बाईं ओर और बाया दाहिनी ओर लाया, अर्थात् दोनों हाथ कैंची के रूप में कर लिए और इस प्रकार बड़ा आम उस के अपने पुत्र को मिल गया। उसने समझा बहुत बड़ा मार्चा मार लिया है उसने। परन्तु दुकान पर बैठा

छोटा भाई यह सब कुछ देख रहा था। उसमें हाथों की बनी कैंची देख ली थी। वह सोचने लगा —"बड़ा भाई बालकों में अपने पराये का भेद करता है। आज आमों की बात है कल कोई और बात हो सकती है जिस में अपने और पराये की भावना आ गई वह क्या इमानदार रह सकता है मेरे प्रति ! नहीं अब साथ नहीं निभेगा।"

घर से अब बड़ा भाई खाना खाकर लौटा छोटे भाई ने कहा— "भाई साहब ! आपने मेरे प्रति जो भ्रातृ स्नेह आज तक दिखाया उसके लिए बारम्बार धन्यवाद। अब दुकान का हिसाब कर लीजिए।"

यह रंग ढंग देखकर बड़े भाई को बड़ा अचरज हुआ उसकी समझ में न आया कि बात क्या है ? वह पूछता है— 'क्यों भैया ! ऐसी क्या बात हो गई किसी ने तुम्हें कुछ कहा है ? मेरी ओर से कोई भूल हुई है आज तू कैसी बात कर रहा है ?"

छोटा भाई बोला भाई साहब ! जब बालकों में आप अपने पराये का भेद करने लगे तो कैसे निभ सकती है अच्छा है बिना लड़े भिड़े हो हम अलग हो जायें। तो बड़े भाई ने जो हाथों की कैंची बनाई उसने उन दोनों का बर्षों पुराना भ्रातृ स्नेह सम्बन्ध काट डाला और बर्षों से चला रहे परस्पर सहयोग और विश्वास का सम्बन्ध टूट गया। दोनों अलग २ हो गए।

यह भाई के हाथों की कैंची रागद्वेष की कैंची थी जिस ने भाई को भाई से अलग कर दिया। रागद्वेष की कैंची है ही ऐसी जो रक्तके सम्बन्धों को तो काट ही देती है लौकिक व्यवहार में तो सम्बन्धों को विच्छेद कर ही डालती है यह कैंची है जो आत्मा को परमात्मा अथवा परमानन्द से भी काट

सर्व समाप्त करना पड़ेगा तभी परमानन्द मिलेगा तभी शान्ति मिलेगी। रागद्वेष की कैंची ने आपको परमानन्द से काट कर भिन्न कर दिया है आपका परमानन्द पहाड़ और सागर के बीच की दूरी के समान दूर नहीं है वह तो बहुत ही निकट है बस दो तार एक साथ जुड़ जायें। यह काम आपका प्रेम की सुई से लेना होगा। ज्ञान का धागा और प्रेम रूपी सुई दोनों मिलकर रागद्वेष रूपी कैंची से कटे हुए सम्बन्ध का पुल बना देंगे। एक किनारे आप खड़े हैं दूसरे किनारे है आप का परमानन्द। इस किनारे जहाँ आप खड़े हैं परमानन्द नहीं है टकराने से कोई लाभ नहीं है। सीधा रास्ता अपनाईये। कवि हुक्म पुरुष के शब्दों में हमारी बात को इस प्रकार व्यक्त करता है

कैंची की बन आदत छोड़ो
भ्रमर सुई से नेहा जोड़ो।
सुखी बने संसार प्रेम की छाया में
आजाओ एक बार प्रेम की छाया में

प्रेम की छाया में आईये राग द्वेष की कैंची से बास्ता तोड़िये फिर देखिये आप को सुख और आनन्द की प्राप्ति होती है या नहीं। पर आप सोचते होंगे पता नहीं कैसा होगा वह परमानन्द जिस की बात महाराज कहते हैं। आप यह भी शंका कर सकते हैं कि—

जब मुहब्बत ही ऐसी है आराम से आगे क्या होगा!

यह एक कवि ने इस पंक्ति की पैरोडी बना दी है—

इस पार तो प्रिये हम तुम हैं उस पार न जाने क्या होगा!

हाँ मुहब्बत है यह संसार का सुख और आराम है वह आत्मिक सुख जिसे मैं परमानन्द कहता हूँ वह परमानन्द सन्ताप का स्वरूप है जहाँ सन्तोष है वहीं सुख है। जैसे कवि की अच्छी खासी पंक्ति की पैरोडी बना दी एक दूसरे कवि ने

और पैरोडी को सुनकर लोग प्रसन्न हो गए, इसी प्रकार आनन्द की पैरोडी मात्र है संसार का सुख। लौकिक सुख पैरोडी मात्र है जाहिर है जिसकी यह पैरोडी है वह अवश्य ही सुन्दर होगा। अच्छा होगा।

आप ने सुना होगा, द्रोणाचार्य निर्धन ब्राह्मण थे, गाय थी नहीं, रोटी तक के लाले थे, गाय कहां से आती। उनका पुत्र अश्वत्थामा पाठशाला में पढने जाता था। एक दिन अपने एक सहपाठी के घर गया वहां उसे दूध पीता देखा। उसने तो कभी दूध पिया ही नहीं था, घर आया तो पहली जो चीज पिता से मांगी वह थी दूध। बहुत समझाया पर वह न माना, बिना दूध पिये वह मानेगा नहीं, यह समझ कर एक उपाय निकाला।

द्रोणाचार्य जानते थे, अश्वत्थामा तो दूध के जायेके से अनभिज्ञ है ही, अतः पानी में आटा घोलकर उसे पिला दिया। अश्वत्थामा उसे दूध समझ कर खुशी २ पी गया। उसे पता ही नहीं चला कि जो वह पी रहा है वह नकली दूध है। इसी प्रकार जिसे असली आनन्द का, वास्तविक सुख, का ज्ञान नहीं वह नकली क्षणिक सुख को ही आनन्द और सुख मानकर उसी के पीछे तन मन लगा देता है। वास्तविक आनन्द के दर्शन हों तब तो उसे पता चले कि जिस को वह आनन्द समझे बैठा था वह आनन्द का उपहास मात्र था।

शेर का बालक गीदड़ों के हाथ लग गया। वह रहने लगा गीदड़ों के परिवार में। गीदड़ों जैसी ही उसकी भावनाएं बनती जाती थीं, पर उसे अपने प्रति असन्तोष बना ही रहता। एक बार उसे सिंह के पास जाने का अवसर मिला। गीदड़ भाग खड़े हुए, पर सिंह का रक्त उबाल खा रहा था, वह अकेला ही सिंह के झुण्ड में चला गया और उसे वहां ज्ञान हुआ कि वह उन पशुओं से भिन्न है जिनके साथ वह रहता सहता है, जब उसे

अपने सिंह होने का ज्ञान हुआ वह उनका साथ छोड़ बैठा। आप की आत्मा भी अपने स्वभाव से विपरीत स्वभाव के चक्कर में फंस गया है। आपका यदि अपने स्वभाव के दर्शन हो जाए तो आप वर्तमान सुख की अनुभूति भूल कर अक्षय सुख की खोज में चलें।

एक भाई मुझ से पूछते हैं महाराज ! आप जिस आनन्द की बात करते हैं पता नहीं चलता वह कौनसा आनन्द है ? दिखाई नहीं देता। जिसे आप क्षणिक अथवा भौतिक आनन्द कहते हैं वह दिखाई देता है। वैसा किसी का भी देखा जा सकता है वह ही बस उसका आनन्द है। एक बार एक शिष्य ने भी अपने गुरु से यही बात पूछी 'गुरुदेव ! कभी दर्शन तो कराईये परमानन्द के।'

गुरु ने कहा "देवानुप्रिय ! आनन्द अनुभव किया जाता करता है देखा नहीं जाता। आनन्द कोई भौतिक पदार्थ नहीं है।

शिष्य की समझ में बात नहीं आई। शिक्षा देने के विचार से ही गुरु ने पास रक्खा डंडा उठा कर दे मारा शिष्य के। शिष्य चीख उठा। कहने लगा 'गुरुदेव ! यह आपने क्या किया ?"

गुरु ने पूछा 'क्यों क्या हुआ ?

शिष्य ने दर्द से कराह कर कहा 'गुरुदेव आपने निरपराधी को डंडा मार दिया इतना दर्द हो रहा है कि बस कुछ न पूछिये और आप के लिये कुछ हुआ ही नहीं ?

गुरु ने कहा दिखाओ कैसा है दर्द।"

शिष्य ने कहा " गुरुदेव ! दर्द हो रहा है बस मैं आपको दर्द दिखाऊं कैसे वह तो अनुभव किया जाता है हाथ में लेकर दिखाने की चीज थोड़े ही है।"

गुरु ने प्रसन्नचित्त होकर कहा तो फिर यही बात है आनन्द के साथ भी। आनन्द दिखाया नहीं जाता अनुभव किया जाता है।

मैं समझता हूँ कि परम आनन्द क्या है यह आप समझ गये

होंगे, मैं उसे हाथ में लेकर तो नहीं दिखा सकता, इतना बता सकता हूँ कि जिस स्थिति में पहुंच कर मनुष्य को तृप्ति और सन्तोष की प्राप्ति हो जाती है, चिन्ताओं से मुक्ति मिल जाती है, सुख दुःख की अनुभूति से छुट्टी मिल जाती है, वह स्थिति होती है, परमानन्द की। और उसकी प्राप्ति के लिए आवश्यक है राग द्वेष का तिलाजलि देना। ज्ञान के चक्षु खोलना और सन्त के नेतृत्व को स्वीकार करके अपने संकुचित दृष्टिकोण को छोड़ विशाल हृदयता, उदार हृदयता के दृष्टिकोण को स्वीकार करना। त्याग ही आनन्द की कुञ्जी है। राग द्वेष के स्थान पर त्याग को जीवन का आधार बनाइये, आत्मा को परमात्मा से जोड़िए, आप आनन्द पा जायेंगे। उसी परमानन्द की प्राप्ति के लिए हम ने लौकिक सुखों को तिलाजलि दी है। आप भी उन की ओर से उदासीन हो जाईये, जिस को खुराक नहीं मिलती उस का अन्त हो जाता है, आप राग द्वेष की ओर से उदासीन हो जाईये, उन्हें भोजन न दीजिए बस वे मर जायेंगे और आप भारी बोझ से बच कर सन्तोष की स्वांस लेंगे, यही होगी परमानन्द की प्राप्ति की पहली सीढी।

पटियाला }
चातुर्मास }

२०—७—५४

समाजवाद, जैन संस्कृति के आंचल में

मैं कई दिन से यह अनुभव कर रहा हूँ कि हमारा सारा देश श्रेणी संघर्ष में जुटा हुआ है। श्रमिकों और उद्योगपतियों के बीच आए दिन विवाद उठते रहते हैं। समाचार पत्रों में औद्योगिक अशान्ति, हड़तालों, भूख हड़तालों, प्रदर्शनों, सभाओं, वक्तव्यों मारकाट, अत्याचारों, लाठीवर्षा, गोलीवर्षा और गिरफ्तारियों के समाचार आए दिन छपते रहते हैं। कहीं किसानों और जागीरदारों में झगड़े हो जाते हैं तो कहीं विचार भिन्नता के कारण दो दलों में परस्पर सिर फुटौवल हो जाती है। कुछ लोग जानना चाहते हैं कि क्या कोई रास्ता ऐसा है जिस के द्वारा समाज में चल रही उथल पुथल का अन्त हो और मानव अपने परिश्रम तथा पौरुष पर विश्वास करता हुआ बिना दूसरे के स्वार्थों को ठेस पहुंचाए काम करता जाए, चैन से रोटी कमाए और संचय की नौबत न आए न समाज की वर्तमान अधोगति रहे।

एक बार एक मजदूर से मेरी बात हुई। उस ने मुझे बताया कि वह अन्य मजदूरों के साथ २ हड़ताल करेगा। मैंने

हड़ताल का कारण मालूम किया। जानते हैं उस ने क्या कहा ? वह बोला—"महाराज! सहन करने की भी एक सीमा होती है। मालिक तो ठाठ करे, नई २ कारें खरीदे नए २ भवन बनवाए, अपने कुत्तों तक को दूध जलेबी चटाए और हम जोकि सारा २ दिन भर खप कर काम करते हैं उस के लिए, जिस से वह इतना धन ठाठ करने के लिए पाता है भूखों मरें, हमारे तन को कपड़ा और पेट को रोटी न मिले, यह कहां का न्याय है ? कई बार वेतन बढ़ाने की मांग की है, तो मालिक बहाना करता है, रुपया नहीं है मुनाफा कम हो रहा है। उस के अपने ठाठ के लिए तो रुपये की कमी नहीं, पर हमारे वेतन के लिए रुपये की कमी पड़ जाती है। हमारी तो कहीं सुनवाई होती नहीं, तब हार कर हड़ताल ही करनी पड़ती है।"

मजदूर की बात सुन कर मैंने समझ लिया कि सारे फ़िसाद की जड़ पैसा है, पेट है, ईर्ष्या है, सुख की चाह है और है अपनी हालत सुधारने की आकांक्षा। अब उस मजदूर को यदि मैं यह कहता कि "भाई! तुम जो अपनी आर्थिक दशा का रोना रो रहे हो, यह तुम्हारी भूल है। तुम परेशान हो इस लिए नहीं कि सेठ ने तुम पर अन्याय कर रक्खा है, बल्कि इस लिए कि तुम अपने पूर्वजन्मों के पापों का फल भोग रहे हो।' तो जानते हैं वह क्या कहता ? वह कहता—"महाराज! हड़ताल करेंगे और नौकरी बढ़वा लेंगे, तब पूर्वजन्म के पाप कहां को चले जायेंगे ?"

उस के इस उत्तर का आधार क्या होता ? यही विचार तो उस के मस्तिष्क में काम कर रहा है कि मेरी आर्थिक दुर्दशा का मूल कारण है कम वेतन। वेतन बढ़ जाए तो दशा सुधर जाए। वेतन क्यों नहीं बढ़ता, क्योंकि मालिक अन्यायी है। जब यह बात मस्तिष्क में है तो ऐसी दशा में उसे कोरा उपदेश कर के नहीं समझाया जा सकता बल्कि बताना होगा वह उपाय जिस से उस

की आर्थिक दशा सुधरे। मालिक को इस बात पर रजामन्द करना होगा कि वह अपने मुनाफे के साथ २ अपने मजदूर के पेट का भी ध्यान रक्खे। कहने को यह बात आसान है पर भौतिक सुखों के लिए तड़प रहे समाज को यूं ही संघर्ष से दूर रक्खा जाना असम्भव है। इस समाज की व्यवस्था के दोषों को दूर करना होगा।

आप जानते हैं मैं 'स्यादवाद' को मानता हूं इसे अनेकांत वाद भी कहते हैं इस 'वाद' के मानने वाले अनेक दृष्टिकोणों को समझ कर उस में से अनुसंधान कर के पवित्र विचार और सत्य निकालने के पक्ष में होते हैं। हम किसी भी बात की हठ कर के और केवल एक पक्ष की बात सुन कर ही कोई फैसला नहीं कर सकते। क्योंकि हमारे विचार में प्रत्येक विचार के पीछे कोई ऐसी बात विद्यमान होती है जो उसे जन्म देती है। उदाहरणार्थ मान लो एक व्यक्ति कहता है कि दूध पीना हानिकारक है दूसरा कहता है दूध स्वास्थ्य के लिए लाभप्रद है। हम दोनों की बात सुनेंगे और सोचेंगे वह कौन सा गुण दूध में विद्यमान है जो मनुष्य को लाभ पहुँचाता है और वह कौन सा अवगुण है जो किसी विशेष प्रकृति के व्यक्ति को हानि पहुँचा सकता है और अन्त में निर्णय करेंगे कि सत्य क्या है? किस दशा में दूध हानि पहुँचाता है और किस दशा में लाभ पहुँचाता है। यह है हमारे निर्णय करने का तरीका और इसी नीति के अनुसार हम वर्तमान समाज की परिस्थियों की परख करते हैं। मजदूर जो कहता है वह भी हम सुन लेते हैं मालिक जो कहता है उसे भी सुनेंगे और फिर दोनों के विचारों को कसौटी पर कस कर देखेंगे कितना सत्य है इन की बातों में तब एक ऐसा रास्ता निकालेंगे जो दोनों के लिए श्रेयस्कर हो। मैंने 'निकालेंगे' शब्द प्रयोग किया है अपनी नीति को स्पष्ट करने के लिए. वरना समाज

की व्यवस्था क्या हो, अधिकार और कर्तव्यों का सामजस्य कैसे हो और शातिपूर्ण वातावरण कैसे रह सकता है, इस के लिए भगवान महावीर ने स्याद्वाद के अन्तर्गत उपाय पहले ही सुझा दिए हैं। और मैं मानता हूँ कि भगवान महावीर के द्वारा प्रवर्तित समाज व्यवस्था वास्तव मे आदर्श व्यवस्था है, जो रास्ता उन्होंने सुझाया वही अहिंसात्मक एवं शातिपूर्ण उपाय है समाज को अनुशासित एव प्रगतिशील रखने के लिए। भगवान महावीर ने गृहस्थ धर्म की, अर्थात् श्रावक धर्म की जो शिक्षा दी है, वह सारी की सारी समाज व्यवस्था ही है, बल्कि जैन धर्म की 'शरीयत' है यह विधान है अहिंसक प्राणियों के लिए। हम उसे भगवान महावीर का समाजवाद भी कह सकते हैं।

जब मैं लोगों को समाजवाद की बात करते देखता हूँ तो प्राय सोचा करता हूँ कि लोग मानसिक तौर पर पश्चिम के इतने दास क्यों हो गए कि पोशाक, मशीन, शिक्षा, ज्ञान, विज्ञान, और यहा तक कि विचार भी पश्चिम से ही लेते हैं और अपने को सारे विश्व के गुरुओं की सन्तान कहने के बाद भी अपने सिद्धातों और अपने दर्शन पर उन्हें इतना विश्वास क्यों नहीं जितना वे पराए विचारों पर करते हैं। मैं मानता हूँ कि ज्ञान विज्ञान किसी एक देश या जाति की सम्पत्ति नहीं होते, परन्तु प्रत्येक बात मे दूसरों का मुंह ताकना भी अच्छी बात नहीं होती, अपने पर भी तो भरोसा करना चहिए। देश के विचारक समाज की वर्तमान दशा को बदल डालने के लिए प्रयत्नशील हैं और अब प्राय सभी किसी न किसी रूप मे समाजवाद को ही कल्याण का एकमात्र मार्ग मान रहे हैं, यह अच्छी ही बात है। परन्तु जो समाजवाद हमारे देश के लिए लाभप्रद होगा वह पहले से ही हमारे ग्रन्थों मे विद्यमान है। किसी को शक हो तो वह भगवान महावीर के विचार उठा कर पढ़े अध्ययन करे

का गहरा अध्ययन हमें समाजवाद की रूप रेखा समझा देगा। यहां मैं समाजवाद शब्द जान बूझ कर प्रयोग कर रहा हूं क्योंकि यद्यपि भगवान ने कहीं समाजवाद शब्द का प्रयोग नहीं किया पर आधुनिक युग में नई विख्यात समाज व्यवस्था को समाजवाद कह कर पुकारा जा रहा है और भगवान महावीर के विचार उसी के अनुरूप हैं अतः मैं उसे भगवान महावीर का समाजवाद कहता हूं। भगवान ने जो समाजवाद हमें दिया, वही एकमात्र व्यवस्था है जो समाज में सुख समृद्धि और शान्ति स्थापित कर सकती है मेरे इस दावे में कितना तथ्य है, इसे समझ लीजिए। यही मेरा आज का विषय है।

एक विद्वान समाज शास्त्री का विचार है कि—

यह समाज दो श्रेणियों में विभाजित है। एक श्रेणी उनकी है जो खाने वालों की है और दूसरी उन की जो खाये जाते हैं।

इसी बात को आधुनिक समाजवाद के प्रणेता महात्मा मार्क्स ने दूसरी प्रकार कहा है, उन का विचार है—

"समाज में दो वर्ग हैं एक शोषक वर्ग दूसरा शोषित। एक वर्ग केवल खाता है और दूसरा वर्ग कमाता है।"

मैं मानता हूं कि वास्तव में आज समाज इसी दशा को पहुंच गया है। इन दो श्रेणियों में से एक श्रेणी जो कमाने वालों की है बहुत बड़ी है समाज के ९० प्रतिशत से भी अधिक लोग इसी श्रेणी में आते हैं शेष वे हैं जो खाये जाने वालों की श्रेणी में हैं। आप जितने लोग बैठे हैं उन में से कोई मुझे शोषक वर्ग का दिखाई नहीं देता। शोषक वर्ग के लोग केवल पूंजी का उपयोग मात्र करने का काम करते हैं। वे समझते हैं यह वैभव उन्हें भगवान ने दिया है और कमाने वाला वर्ग समझता है यह पूंजी हमारी कमाई हुई है, इस पर उन का अधिकार अनुचित है।

अधिकार नहीं है किसी की मजबूरियों से लाभ उठाने का, तुम्हें हक नहीं है किसी का शोषण करने का। तुम स्वयं अपना शोषण पसन्द नहीं करोगे तो फिर तुम दूसरे की आत्मा को भी अपने समान समझ कर व्यवहार करना चाहिए।

महात्मा गांधी कहते हैं –

"इस समाज को घुन लगा हुआ है काम न करने की इच्छा और दूसरों के श्रम पर पलने की इच्छा ऐसा घुन है जो समाज की शान्ति को खाये जा रहा है। मेरी समझ में यह बात कदापि नहीं आती कि अहिंसक किसी का शोषण कैसे कर सकता है?"

गांधी जी ठीक ही कहते थे जो अहिंसक है वह बिना कुछ किए दूसरों के परिश्रम पर जीना पसन्द कर ही नहीं सकता। और यदि कोई ऐसा करता है तो वह अहिंसक हो नहीं है। जिसे अहिंसा में विश्वास हो तो वह किसी की खून पसीने की कमाई को हड़पने के लिए तैयार हो ही नहीं सकता।

आज के समाज की मुख्य समस्या शोषण है लोग अहिंसक हो जाय तो शोषण मिटे और शोषण मिटे तो समाज में से शोषक तथा शोषित की संज्ञा का ही नाम निशान न रहे। समाजवादी विचारधारा के लोग भी तो ऐसा ही समाज चाहते हैं जो शोषण विहीन हो।

प्रायः देखा जाता है कि लोग अन्नाभाव में एड़ियां रगड़ रगड़ कर मर जाते हैं। और गोदामों में लाखों मन अनाज भरा रखा रहता है। सन १९४३ में हमारे देश में यही हुआ बंगाल में भूखों मरते लाखों व्यक्ति तड़प तड़प कर मर गए। एक एक मुट्ठी चावल के लिए बहनों को अपने सतीत्व बेचने पड़े माताओं को अपनी गोदी के लाल एक एक सेर चावल के बदले बेच देने पड़े। कवि चीख पड़ा—

पूरब देश में डुग्गी बाजी फैला दुख का जाल
दुख की अग्नि कौन बुझाए सूख गए सब ताल
जिन हाथों ने मोती रोले आज वही कंगाल रे साथी,
आज वही कंगाल
भूखा है बंगाल रे साथी भूखा है बंगाल।

इसी कवि ने मानवता के सिर पर लगे कलंक को व्यक्त करते हुए कहा—

कोठियों मे गाजे बैठे बनिए सारा नाज
सुन्दर नारी भूख की मारी बेचे घर २ लाज
चौपट नारी कौन संभाले चार तरफ़ भौंचाल, रे साथी
भूखा है बंगाल।

बंगाल के व्योपारियों की खात्तिया भरी पडी थीं, लोग भूखे मर रहे थे। ३५ लाख लोगों के प्राण गए, उन की हत्या की जिम्मेदारी किस पर है ? उन व्यक्तियों पर जो गल्ले गोदाम सभाले बैठे थे। भगवान महावीर द्वारा की गई 'मानव' की व्याख्या से ऐसे लोग मनुष्य कहलाने के हक़दार नहीं है। वे हैं हमारे समाज के कलंक। समाज के हत्यारे। बंगाल के अकाल की तो बात पुरानी हुई जाती है, आज भी हमारे देश के कुछ भागों में अनावृष्टि अथवा अतिवृष्टि के कारण अकाल पड जाते हैं, लोग भूखों मर जाते हैं और मुनाफा खोरों के कानों पर जू तक नहीं रेंगती। भगवान् महावीर इस प्रवृति को दानवीय एव राक्षसी प्रवृत्ति मानते हैं।

भगवान् महावीर ने साफ कहा है—

'असम विभागी न हु तस्स मोक्खो'

अर्थात्–'जो बाट कर नहीं खाता उसे मोक्ष नहीं मिल सकता।'

यह बात कह कर भगवान् ने इस आदर्श की स्थापना की है कि बाट कर खाओ, साथी को खिला कर खाओ, अपना

है अपरिग्रह व्रत। इस व्रत का अर्थ है कि गृहस्थी पाच वस्तुओं के अति-परिग्रह-त्याग की उचित मर्यादा निर्धारण करे।

१– मकान, दुकान और खेत आदि की भूमि

२– सोना और चादी

३– नौकर चाकर तथा गाय, भैंस आदि द्विपद चतुष्पद

४– मुद्रा, जवाहारात आदि धन और धान्य

५– प्रतिदिन के व्यवहार मे आनेवाली पात्र, शयन, आसन आदि घर की अन्य वस्तुएं।

सामाजिक विषमता, संघर्ष कलह एव अशाति का मुख्य कारण परिग्रह वाद को मानकर ही भगवान् ने उपरोक्त पांच मर्यादाओं के निधारण का विधान रक्खा था। भगवान् का कहना है कि स्व और पर की शाति के लिए अमर्यादित स्वार्थवृत्ति एवं सग्रह बुद्धि पर नियन्त्रण रखना आवश्यक है। यदि अति - परिग्रह - त्याग की भावना से सभी लोग काम करने लगें तो न किसी के पास इतना सग्रह होगा कि अन्य लोग देखते ही रह जाए और न कोई दूसरों की संग्रह वृत्ति के कारण भूखों ही मरेगा।

आधुनिक समाजवाद की मान्यता है कि किसी भी प्रकार का माल, पूञ्जी अथवा सामान तैयार करने में किसी एक व्यक्ति की शक्ति नहीं लगती, वरन् समाज के कितने ही लोगों के सहयोग की आवश्यक्ता होती है अत उसका स्वामित्व किसी एक को नहीं मिलना चाहिए, वरन् समाज ही उसका स्वामी है, हा जिनका सहयोग प्रत्यक्ष रूप से उसके उत्पादन में मिला है उन्हें उस में से उनके परिश्रम के अनुसार भाग मिलना चाहिए। परन्तु भगवान् महावीर तो इससे भी आगे की बात कहते हैं,उन का फरमान तो यह है कि व्यक्ति अति परिग्रह त्याग के लिए अपने आप एक उचित सीमा निर्धारित करले कि उससे सधिक वह नहीं लेगा। नहीं भोगेगा, यहा तक कि गाय भैंस, खाने पीने के बरतन भाण्डे,

मान पहनने बेलन की वस्तुएं आदि की सीमा निर्धारित करें।

जैन संस्कृति इससे भी आगे जाती है। वस्तुओं के प्रति आसक्ति को कम करने के लिए भोग मर्यादा होनी चाहिए, इस लक्ष्य को दृष्टि में रखकर ही गृहस्थों के लिए बनाए गए बारह व्रतों में सातवां उपभोग परिभोग परिमाण व्रत रक्खा गया है।

शास्त्रों का कथन है कि अनियन्त्रित भोगासक्ति संग्रह वृत्ति को उत्तेजित करती है आप भी इसे मानते ही होंगे कि परिग्रह जाल संग्रह वृत्ति ही पुत्री है। और मैं आप से कहता हूँ कि परिग्रह का जाल ज्यों ज्यों फैलता जाता है त्यों त्यों हिंसा, घृणा, द्वेष, असत्य चोर्य इत्यादि पापों की परम्परा लम्बी होती जाती है अतः जैन संस्कृति ने अपनी शक्ति इधर से भी लगी रक्खी और मनुष्य को गृहस्थ के उपभोग परिभोग में आने वाले भोजन पान, वस्त्र आदि पदार्थों के प्रकार एवं संख्या का मर्यादित करने का विधान रक्खा है। यह मर्यादा एक निश्चित काल अथवा जीवन पर्यन्त के लिए भी की जा सकती है।

सोचिए, क्या इतना उत्कृष्ट आदर्श किसी संस्कृति ने आपके सामने रक्खा? समाजवाद वैज्ञानिक रूप से परिग्रह का मूलोच्छेदन करने की बात कहता है और भगवान् महावीर व्यक्ति के अन्दर से ममत्व मोह और आसक्ति की भावना तक का मूलोच्छेदन करना चाहते हैं। आपको विश्वास आये या न आये यह सच है कि इस पर अमल करके सारे समाज का शोषण समाप्त किया जा सकता है।

इसी सातवें व्रत की ही बात कहता हूँ यह व्रत अनुचित व्यापारों का भी निषेध करता है जिस व्यापार से जीवों की हत्या हो महारंभ हो उसको न किया जावे और ऐसा व्यापार भी वर्जित है जिस के द्वारा मनुष्य को धोखा दिया जाता हो अथवा समाज को जिस से हानि पहुँचती हो। और आचार जैन संस्कृति द्वारा

निषिद्ध हैं।

अब बताइये भगवान् महावीर के विधान में रह गई ऐसी कोई गुंजायश जिस के द्वारा व्यक्ति समाज के अहित में कुछ भी कर सके? आधुनिक समाजवाद व्यक्ति को कानून द्वारा ठीक करने की बात करता है और भगवान महावीर का समाजवाद व्यक्ति को स्वंय समाजहित में अपने लिए वह विधान बनाने को कहता है जिसके द्वारा उसका समस्त ऐसी प्रवृत्तियां नियंत्रित हो जाये जिनसे वह अपना और जनता का हित कर सकें। व्यक्ति को सुधारने की जिम्मेदारी भगवान् महावीर का सिद्धान्त किसी सत्ता पर नहीं छोड़ता बल्कि स्वय व्यक्ति पर आयद करता है।

जैन गृहस्थी का आदर्श क्या है? समाज से कम से कम लो और समाज को अधिक से अधिक दो।

साईं इतना लीजिए जा में कुटुम्ब समाय
मैं भी भूखा न रहूँ, साधु न भूखा जाय॥

यह है वह आदर्श जिस के लिए जैन संस्कृति अपने पर गर्व करे तो अनुचित न होगा। केवल इतना लो कि कुटुम्ब खाये पिये और साधु की क्षुधा पूर्ति करने में भी कमी न पड़े, शेष अपने पास मत रक्खो। आजाए तो दान कर दो, उसमे मोह मत करो।

'आधुनिक समाजवाद' क्या कहता है? यह न कि अपने स्वार्थ की समाज के स्वार्थ में आहुति दे दो। समाज से अपने लिए विशेष भोग प्राप्त करने की चेष्टा मत करो, मानव को मानव की बुद्धि पर शासन करने का अधिकार न हो, सबको अपने गुणों को समाज के हित मे प्रयोग करने की स्वतन्त्रता मिले, सबको समाज उन्नति का अवसर प्राप्त हो, ऊंच नीच का भेद भाव समाप्त हो रंग, नस्ल, कुल, जाति अथवा सम्पत्ति के कारण व्यक्ति व्यक्ति में भेद न हो।

भगवान् महावीर के उपदेशों का भी यही उद्देश्य था, उन्होंने

सोने उठने बैठने की वस्तुएं आदि की सीमा निर्धारित करे।

जैन संस्कृति इससे भी आगे जाती है। वस्तुओं के प्रति आसक्ति को कम करने के लिए भोग मर्यादा होनी चाहिए, इस तथ्य को दृष्टि में रखकर ही गृहस्थी के लिए बनाए गए बारह व्रतों में सातवां उपभोग परिभोग परिमाण व्रत रक्खा गया है।

शास्त्रों का कथन है कि अनियन्त्रित भोगासक्ति संग्रह बुद्धि को उत्तेजित करती है, आप भी इसे मानते ही होंगे कि परिग्रह का संग्रह बुद्धि ही बुलती है। और मैं आप से कहता हूं कि परिग्रह का जाल ज्यों ज्यों फैलता जाता है त्यों त्यों हिंसा मृषा इस, अब्रह्म चार्य इत्यादि पापों की परम्परा लम्बी होती जाती है अत जैन संस्कृति ने अपनी शक्ति उधर से भी खुली रक्खी और मनुष्य को गृहस्थ के उपभोग परिभोग में आने वाले भोजन पात्र वस्त्र आदि पदार्थों के प्रकार एवं संख्या का मर्यादित करने का विधान रक्खा है। यह मर्यादा एक निश्चित काल अथवा जीवन पर्यन्त के लिए भी की जा सकती है।

बोलिए क्या इतना उत्कृष्ट आदर्श किसी संस्कृति ने आपके सामने रक्खा? समाजवाद वैज्ञानिक रूप से परिग्रह का मूलोच्छेदन करने की बात कहता है और भगवान् महावीर व्यक्ति के अन्दर से ममत्व मोह और आसक्ति की भावना तक का मूलोच्छेदन करना चाहते हैं। आपको विश्वास आवे या न आवे यह यह व्रत है कि इस पर अमल करके सारे समाज का संघर्ष समाप्त किया जा सकता है।

इसी सातवें व्रत की ही बात कहता हूं यह व्रत अनुचित व्यापारों का भी निषेध करता है जिस व्यापार से जीवों की हत्या हो महारंभ हो उसको न किया जावे और ऐसा व्यापार भी वर्जित है जिस के द्वारा मनुष्य को धोखा दिया जाता हो अथवा समाज का जिस से हानि पहुँचती हो। और बाजार जैन संस्कृति द्वारा

निषिद्ध है।

अब बताइये भगवान् महावीर के विधान मे रह गई ऐसी कोई गु जायश जिस के द्वारा व्यक्ति समाज के अहित मे कुछ भी कर सके ? आधुनिक समाजवाद व्यक्ति को कानून द्वारा ठीक करने की बात करता है और भगवान महावीर का समाजवाद व्यक्ति को स्वय समाजहित मे अपने लिए वह विधान बनाने को कहता है जिसके द्वारा उसका समस्त ऐसी प्रवृत्तिया नियत्रित हो जायें जिनसे वह अपना और जनता का हित कर सकें। व्यक्ति को सुधारने की जिम्मेदारी भगवान् महावीर का सिद्धान्त किसी सत्ता पर नहीं छोडता वल्कि स्वय व्यक्ति पर आयद करता है।

जैन गृहस्थी का आदर्श क्या है ? समाज से कम से कम लो और समाज को अधिक से अधिक दो।

साई इतना लीजिए जा में कुटुम्ब समाय
मैं भी भखा न रहूँ, साधु न भूखा जाय ॥

यह है वह आदर्श जिस के लिए जैन सस्कृति अपने पर गर्व करे तो अनुचित न होगा। केवल इतना लो कि कुटुम्ब खाये पिये और साधु की क्षुधा पूर्ति करने में भी कमी न पड़े, शेप अपने पास मत रक्खो। आजाए तो दान कर दो, उसमे मोह मत करो।

'आधुनिक समाजवाद' क्या कहता है ? यह न कि अपने स्वार्थ की समाज के स्वार्थ में आहुति दे दो। समाज से अपने लिए विशेप भोग प्राप्त करने की चेष्टा मत करो, मानव को मानव की बुद्धि पर शासन करने का अधिकार न हो, सबको अपने गुणों को समाज के हित में प्रयोग करने को स्वतन्त्रता मिले, सबको समाज उन्नति का अवसर प्राप्त हो, ऊच नीच का भेद भाव समाप्त हो रंग, नस्ल, कुल, जाति अथवा सम्पत्ति के कारण व्यक्ति व्यक्ति में भेद न हो।

भगवान् महावीर के उपदेशों का भी यही उद्देश्य था, उन्होंने

अस्पृश्यता को अमानवीय घोषित किया जन्म से किसी के ऊँचे और किसी के नीचे होने का विरोध किया। सब जीवों को अपने ही समान समझने और जियो तथा जीने दो का सिद्धांत संसार को देने का और क्या उद्देश्य था? यही तो कि किसी प्रकार की विषमता न रहे करुणा का सागर प्रत्येक के हृदय में ठाठें मारता था।

कुछ बातें तो आधुनिक समाजवादियों और भगवान् महावीर के उपदेशों के समान हैं। जैसे समाजवादी भगवान् को कर्ता नहीं मानता। भगवान् महावीर ने सब से पहले विश्व में यह बात कही और उसके लिए कितने ही तूफानों का उन्हों ने मुकाबला किया। समाजवादी परिग्रह और शोषण को अमानवीय और अनुचित मानते हैं भगवान महावीर हजारों वर्ष पहिले इसी का उपदेश देते थे। भगवान महावीर मानव मानव में भेद करने के विरोधी थे समाजवादी भी उन के इस उपदेश का पालन करने को कहते हैं।

परन्तु कुछ बातों में जैन संस्कृति आधुनिक समाजवाद से आगे है। आधुनिक समाजवाद व्यक्ति की अति-परिग्रह बुद्धि को समाज की सत्ता द्वारा नियन्त्रित करने का पक्षपाती है जब कि जैन संस्कृति मनुष्य को स्वयं अपने आप को नियन्त्रित करने की सीख देती है। समाजवाद व्यक्ति को समाज द्वारा प्राप्त अथवा अपने द्वारा कमाए धन का उपभोग करने की खुली छूट देता है जबकि जैन संस्कृति व्यक्ति के भोग उपभोग की भावना को नियन्त्रित करने का आदेश देती है जो मिले उस के उपभोग की भी मर्यादा रक्खो यह है जैन धर्म का आदेश। समाजवादी कानून द्वारा व्यक्तियों को सदाचार सिखाना चाहते हैं पर जैन संस्कृति स्वभाव से ही मनुष्य को सदाचारी रहने की शिक्षा देती है।

दो बातें आप जान लीजिए। समाजवादी कहता है सारा

समाज नियन्त्रित हो जाए, भोग उपभोग के सम्बन्ध में तो व्यक्ति स्वयमेव त्यागी बनने की ओर प्रवृत्त होगा और जैन संस्कृति कहती है कि प्रत्येक मनुष्य स्वय को नियन्त्रित कर ले तो मारा समाज सुधर जाएगा।

विषय बड़ा रूखा सा था, फिर भी था बहुत उपयोगी, मैंने इसे मक्षिप्त रूप मे समझाने की चेष्टा की है। मैं सोच रहा हूँ कि आधुनिक ममाजवाद और जैन संस्कृति पर अपने विचार सविस्तार प्रकट करना। साधन और समय दोनो प्राप्त हुए तो मैं मारे समाज के सामने उक्त विषय पर अपने विचार पुस्तक रूप में प्रस्तुत करसकूंगा।

पटियाला चातुर्मास } २१—७—५४

मन वचन और देह को

अनुशासित रक्खो

आज मैं आप से कहना यह चाहता हूँ कि आप मन वचन और देह इन तीन के प्रति सदा सावधान रहिए, मगर तुम्ही और आप गए गड्ढे में। इन से आप का क्या सम्बन्ध है। और आप इन्हें नियन्त्रित कैसे कर सकते हैं इसे समझना बहुत आवश्यक है। और आज इसी बात को मैं समझाऊंगा, परन्तु अपने विषय प्रवेश के रूप में आप को जैन संस्कृति के इतिहास की एक प्रसिद्ध कथा सुनाता हूँ।

भरत चन्द्र नाम के एक राजा थे, युवावस्था में ही वे धर्म कर्म में रुचि लेने लगे और शनैः शनैः धर्म प्रवृत्ति का रंग गहरा ही होता चला गया। पूर्ण युवावस्था आते ० उन के हृदय में संसार के प्रति विरक्ति के भाव घर कर गए। आप जानते ही होंगे कि एक बार जो आत्मा और विश्व का रहस्य समझ जाता है उसे फिर सारा संसार भी बांध कर रखना चाहे तो भी गृहस्थ के प्रति उसे आसक्ति नहीं हो सकती। भरतचन्द्र का मन तो वैराग में रम गया था उन्हें महल का वैभव काटने

सा लगा और वे मुनि व्रत धारण कर लेने के लिए उतावले हो गए।

प्रजाजनों को यह समाचार मिला तो वे अपने न्यायप्रिय राजा की इस प्रकार राज्य त्याग कर चले जाने की कल्पना कर के ही दुखी होने लगे। अत प्रश्न चन्द्र से निवेदन किया गया कि अभी वे राज्य न त्यागें, उस समय तक अवश्य ही सत्तारूढ रहें जब तक उन का स्थान लेने वाला कोई राजकुमार न हो जाए।

प्रजा की प्रार्थना को स्वीकार कर के उन्हों ने कुछ दिन गृहस्थ धर्म निभाने का निर्णय कर लिया। परन्तु उन का हृदय सदा राज काज से उचाट रहता था वे अपनी प्रजा के एक भी व्यक्ति को दुखित नहीं देखना चाहते थे।

कुछ दिनों बाद एक समय ऐसा भी आ गया कि महल मे बधाईया गायी जाने लगीं। प्रश्न चन्द्र के घर एक चाद से बेटे ने जन्म लिया और तब उन्हों ने सन्तोष की स्वास ली। उन्हें तो गृहस्थी के जंजाल में फसे रहने की एक एक घडी दुखदायी प्रतीत हो रही थी। ज्यों ही बालक ने अपने पैरों पर खडा होना सीखा, वे गृहस्थ से मुक्त हो गए। बालक का भार अपने सुयोग्य प्रधान मत्री को सौंपा और उसे आदेश दिया कि राज्य को बालक की धरोहर समझ कर उस समय तक उसे सुचारु रूप से चलाए जाए जब तक बालक स्वय राज काज सम्भालने योग्य न हो जाए।

मुनिव्रत धारण किया और हो गए तपस्या में लीन। उन्हें तो जैसे बहुत देरी हो गई थी कर्तव्य-क्षेत्र मे उतरने मे। लगन थी अत अपने को पूर्णतया तप में झोंक दिया। एकाग्रचित्त हो कर तप कर रहे थे कि एक समय भगवान् महावीर नगर के बाहर उद्यान में पधारे। दर्शनों के लिए दूर २ की जनता उमड़

पड़ी। भगवान के चरणों में अगाध श्रद्धा होने के कारण श्रेणिक राजा भी दर्शनार्थ चल पड़ा उस स्थान की ओर। रास्ते में देखा मुनि प्रसन्न चन्द्र का ध्यान मग्न। मुनि देख राजा श्रेणिक वन्दना के लिए पहुँचा। बारम्बार उसने वन्दना की पर ध्यानमग्न प्रसन्न चन्द्र का तो जैसे कुछ पता ही नहीं। अनेक प्रयत्न करने पर भी श्रेणिक की ओर प्रसन्न चन्द्र का ध्यान आकर्षित नहीं हुआ। एकाग्रचित्तता इसे ही तो कहते हैं।

अपूर्व तेज से चमकते मस्तक वाले इस युवा मुनि की एकाग्रचित्ता देख श्रेणिक की श्रद्धा उमड़ पड़ी। उसने भी बहुत कर मुनि की प्रशंसा की, पर प्रशंसा से भी प्रसन्न चन्द्र का अपनी ओर आकर्षित नहीं किया तब तो श्रेणिक का और भी श्रद्धा हो गई। सोचने लगा कितना महान तपस्वी है प्रशंसा सुनकर भी कोई भाव चेहरे पर नहीं उभरा। वास्तव में मुनि हो तो ऐसा हो। मुग्ध भाव से प्रशंसा कर वह चल पड़ा भगवान् के चरणों की ओर।

भगवान् के दर्शन कर उसका मन प्रफुल्लित हो गया पर प्रसन्न चन्द्र की प्रशंसा करना न भूला। कहने लगा—"भगवन! आज रास्ते में जैसे युवा तपस्वी मुनि के दर्शन हुए हैं वास्तव में वैसे मुनि के दर्शन होने दुर्लभ ही होते हैं। इतनी एकाग्रचित्तता कि प्रशंसा पर भी न चेहरे पर हर्ष न विषाद। मैं बहुत अपनी ओर उनका ध्यान आकर्षित करने का प्रयत्न करता रहा पर उनके लिए तो जैसे कोई बात हुई ही नहीं। मुझ जैसे राजा को अपने चरणों में पड़ा देखकर भी जिनके चेहरे पर कोई भाव प्रगट न हुआ ऐसे मुनि का हे प्रभु! कितना ऊँचा स्थान मिलेगा?

इधर भगवान् से श्रेणिक की उक्त वार्ता चल रही है उधर नगर के दो व्यक्ति उस तरुण तपस्वी प्रसन्न चन्द्र के निकट पहुँच जाते हैं नाम है एक का सुमुख और दूसरे का दुर्मुख। सुमुख ध्यान मग्न प्रसन्न चन्द्र को देखकर कहता है—"अहा हा! कितना महान

तपस्वी है, इसकी अवस्था देखो और फिर देखो इसका त्याग। राज महलों के वैभव को लात मार कर यह सुन्दर स्वस्थ युवा राजा घोर तपस्या में लीन है। कितना महान् है यह।"

दुर्मुख तो यथा नाम तथा गुण स्वभाव वाला व्यक्ति था ही, अत उसने सुमुख की बात सुन कर तुरन्त कहा– "यह भी कोई महान् व्यक्ति है। इसने अपनी आत्मा के कल्याण के लोभ में अपने नन्हे से बेटे को मन्त्री के हवाले कर दिया। यदि प्रधान मंत्रीके मन में राज्य को हड़प लेने की ही बात आजाए तो उस कोमल राज कुमार की गरदन मरोड डालना उसके लिए कौन बड़ी बात होगी अच्छा चलो मान लिया प्रधान मन्त्री बडा भला व्यक्ति है,पर दूसरे राजा तो राजकुमार को बच्चा समझ कर राज्य पर आक्रमण कर ही सकते हैं। मान लो राजकुमार बेचारा शत्रुओं के हाथ पड गया तो उस कोमल कली का कितना करुणाजनक अन्त होगा उसके बचपने के कारण राज्य पर हुए आक्रमण मे सेना के जो लोग मारे जायेंगे सो अलग , तुम्हीं बताओ ऐसी दशा में राजकुमार और उसके सैनिकों की हत्या की जिम्मेदारी किस पर आयेगी ? क्या इस तपस्वी पर नहीं जो अपने जिगर के टुकड़े को इस असहाय अवस्था में छोड आया पराये हाथों में। अरे! इस मुनि को तो अपने कर्तव्य का ही ज्ञान नहीं है।"

दुर्मुख की बातें प्रश्न चन्द्र के कानों में पड रही थीं , अचानक ध्यान चला गया दुर्मुख की बातों की ओर और वह सोचने लगा यदि मेरे राजकुमार के ऊपर किसी ने हाथ उठाया तो क्या होगा? क्या उसकी हत्या की जिम्मेदारी मेरे ऊपर नहीं आयेगी ? तपस्या में लीन आत्मा और एकाग्रचित्त मन की समाधि टूट गई और मुनि प्रश्न चन्द्र का मन कह उठा –"नहीं, मेरे राजकुमार का कोई भी बाल बाका नहीं कर सकता।"

उसी समय दूसरी ओर श्रेणिक पूछ रहा था भगवान् महावीर

से— प्रभु ! प्रसन चन्द्र जैसे महान तपस्वी को कौन सा उच्च स्थान मिलेगा ?"

भगवान् बोले—"पहला नरक मिलेगा उसे।"

श्रेणिक भौंचक्का रह गया।

इधर प्रसन चन्द्र ने सोचा— मेरे रहते क्या मेरे बाल पर कोई आंख उठाए ?"

श्रेणिक को विस्मित देख भगवान ने कहा— "श्रेणिक अब तो उसे दूसरा नरक मिलेगा।"

प्रसन चन्द्र ने सोचा— "मैं मुनि हूं तो क्या हुआ हूँ तो राजकुमार का बाप।"

उधर भगवान् महावीर ने कहा—"अब प्रसन चन्द्र को तीसरा नरक मागना होगा।"

प्रसन चन्द्र इसी प्रकार अपने बेटे की रक्षा के बारे में सोचता चला गया और उधर भगवान महावीर श्रेणिक को उस के अन्तिम परिणाम की बात बताते रहे। भगवान् कहते रहे— अब चौथा नरक अब पांचवां अब छठा । प्रसन चन्द्र को कौन सा स्थान मिलेगा उस के सम्बन्ध में भगवान की घोषणा उस की भावना के साथ २ बदलती जा रही थी और श्रेणिक आश्चर्य चकित था।

इधर प्रसन चन्द्र को आवेश आया और वह उठ खड़ा हुआ हाथ में हाथ उठा तलवार के वार की तरह कण्ठ से आवाज निकली— मैं राजकुमार के शत्रुओं का वध कर डालूं गा। आवाज के साथ २ हाथ की हरकत हुई थी।

भगवान की वाणी गूंजी— "अब सातवां नरक भागना पड़ेगा प्रसन चन्द्र को।"

इधर प्रसन चन्द्र का तलवार की भांई उठा हाथ उत्तेजना के कारण सिर में जा टकराया। केश रहित सिर पर हाथ

लगता था कि ज्ञान तन्तु जागृत हुआ—"ओह ! मैं तो मुनि हूँ, मै तो ससार से विरक्त हो चुका हूँ फिर मुझे सासारिक सम्बन्धों से क्या मतलब?"

प्रसन्न चन्द्र की भावना में परिवर्तन आना था कि भगवान् ने राजा श्रेणिक से कहा—"श्रेणिक ! अब वह छठा नरक पाने की स्थिति में है।"

सातवें नरक से छठे की बात आ गई, तब तो श्रेणिक को और भी अधिक आश्चर्य हुआ। उधर प्रसन्न चन्द्र ने सोचा—"मैं मुनि हूँ, पर अभी तक मेरे मन के किसी कोने म मोह ममत्व कुण्डली मारे बैठा है, इस से बडी लज्जा की बात और क्या होगी।"

वह लज्जित था और दूसरी ओर त्रिकाल दृष्टा भगवान् ने कहा—"प्रसन्न चन्द्र को अब छठा नहीं पाचवा नरक मिलेगा।"

भगवान् की यह बातें श्रेणिक की समझ मे नहीं आ पा रही थीं, वह बस अचम्भे मे था और भगवान् की बात सुन रहा था। प्रसन्न चन्द्र की भावना चलचित्र के बदलते दृश्यों की भाति बदल रही थी वह शनै शनै अपनी भूल को स्वीकार कर अपनी आलोचना कर रहा था, ज्यों ज्यों वह पवित्र एवं शुभ विचारों को हृदयंगम कर अपने अशुभ विचारों को मन से बाहर निकालते जाने में सफलता प्राप्त करता जाता, उस के परलोक की स्थिति मे परिवर्तन होता जाता। भगवान् की घोषणाए चलती रही और धीरे २ सातवें नरक से चलकर बात पहले नरक तक आ गई और उधर प्रसन्न चन्द्र सोचते २ यहा तक पहुचा—

"आह मुनि वाणा मेरे पास है और मैं मुनि रूप मे रहकर गृहस्थी की चिन्ता मे था, मैंने इस वाणे के प्रति कितना अन्याय किया है ? न जाने इस का मुझे क्या फल भोगना पड़ेगा ?"

उस के मन में यह भाव आने थे कि उधर भगवान् ने

भाश्चर्य चकित राजा श्रेणिक से कहा – 'अब वह पहले स्वर्ग में स्थान पायेगा।

श्रेणिक विस्फारित नेत्रों से भगवान को देखने लगा।

उधर प्रसन्न चन्द्र के मन में आया – 'हाय! मैं ने यह क्या किया?"

पश्चाताप की अग्नि प्रज्वलित होने थी कि उधर भगवान ने कहा – 'श्रेणिक अब प्रसन्न चन्द्र को दूसरा स्वर्ग मिलेगा।"

प्रसन्न चन्द्र सोचता चला गया। अपने राग युक्त विचारों के लिए उसको बहुत पश्चाताप हो रहा था भगवान स्वर्गों की श्रेणी जो उसे मिल सकेगी उन विचारों के कारण की घोषणा करते जा रहे थे ज्यों २ प्रसन्न चन्द्र का पश्चाताप का भाव गहरा होता जा रहा था उसके स्वर्ग की श्रेणी बढ़ती चली जाती थी। और जहां से अब प्रसन्न चन्द्र ने कहा – मैंने घोर पाप किया है मैं इसके लिए प्रायश्चित करूंगा।"

मुनि के मन मे यह विचार आता था कि भगवान ने घोषणा कर दी –"श्रेणिक! अब प्रसन्न चन्द्र को २६वां स्वर्ग मिल सकता है।"

और जब प्रसन्न चन्द्र ने आदर्श तपस्वी की भांति दृढ़ संकल्प किया कि वह प्रायश्चित स्वरूप एक मास तक निराहार रह कर घोर तपस्या करेगा और एकाग्रचित्त होकर ध्यान मग्न हुआ भगवान महावीर ने श्रेणिक को बताया— तो प्रसन्न चन्द्र को कैवल्य प्राप्त होगया।"

श्रेणिक के आश्चर्य की सीमा न थी उस ने कर बद्ध निवेदन किया— भगवन! यह क्या बात है कि पहले आप मुनि प्रसन्न चन्द्र के लिए नरक बताते रहे फिर स्वर्ग बताने लगे और अभी कैवल्य मिलने की बात आप ने कही तनिक सी देरी में यह सब क्या हो गया।

जानते हैं भगवान ने क्या कहा? भगवान् बोले— "श्रेणिक

वैसे जैसे मन के भाव रग बदलते रहते हैं वैसे वैसे ही परलोक में व्यक्ति की स्थिति बदलती जाती है। प्रश्न चन्द्र को मोह ने दबोचा और ज्यों २ मोह की भावना मन में बढती गई, नारकीय फल की व्यवस्था होती गई, पर ज्यों ही मन पवित्र होता गया, राग द्वेष से हटता गया, आत्मा नर्क से उभरता गया और अन्त मे जब पश्चाताप की अग्नि ने सारे राग द्वेष की भावना को भस्म निमल बना दिया, आत्मा पवित्र होगई तो कैवल्य प्राप्त कर मनको हो गया मन स्थिति का आत्मा पर बड़ा प्रभाव पड़ता है,'

भगवान् ने मन की स्थिति के बारे मे कहा है —

'मणसा बन्धो, मणसा मोक्खो'

अर्थात्- मन से ही बन्धन है और मन से ही मुक्ति।

भगवान् की इसी बात को एक और तत्व ज्ञानी ने इन शब्दो मे व्यक्त किया है—

मनएव मनुष्याणा कारण बन्ध मोक्षयो'

यह है मन का स्थान हमारे जीवन में। यही बात प्रगट करती है यह कथा, जो मैंने आपको सुनाई। अब आप आसानी मे समझ सकते हैं कि आत्मा को बन्धन मुक्त करने के लिए मन की पवित्रता कितनी आवश्यक है। अत आत्मा की शुद्धि के लिए मन की पवित्रता पर सभी धर्मों ने अधिक बल दिया है। मन ही तो न जाने कितने नाच नचाता है व्यक्ति को। मन मे तृष्णा का वास हो जाए तो वह जितना तृष्णा के मोह मे फसता जाएगा, आत्मा भी उतना ही कलुषित होता जाएगा। सयम की शिक्षा देते हुए तभी तो कहा गया है कि हे मानव! अपने मन को नियत्रण मे रक्खो, आत्मा को मन का दास मत बनने दो, क्योंकि स्वच्छन्द एवं दोषों की ओर प्रवृत्त मन अपने साथ आत्मा को भी ले डूबता है, मन कहता है—

'हम तो डूबे हैं सनम तुम को भी ले डूबेंगे।"

फैसला कर लिया। सेठ देही राम हैं दुकान के स्वामी, श्रेष्ठ और उत्तम दुकान है उन की। आत्मा राम बोले—"ला० देही राम जी आप की दुकान कुछ दिन के लिए मिल जाती तो मै अपना एक शानदार रोजगार चला देता।"

देही राम ने कहा—"बात तो आप की ठीक है पर मेरी एक शर्त है आप के मुनाफे में से एक भाग प्रतिदिन मुझे मिला करेगा।"

आत्मा राम को तो दुकान चाहिए थी, मजबूरी थी शर्त स्वीकार कर ली, मासिक अथवा वार्षिक किराया न सही प्रतिदिन कुछ दे दिया करेंगे, यही सोचा आत्मा राम ने।

दुकान तो मिल गई, एक बात बनी। अब सेठ आत्मा राम को चिन्ता हुई एक मुनीम की। मुनीम भी ऐसा जो चुस्त चालाक हो, समझदार परिश्रमी और व्यापार के समस्त गुर जानता हो। बडी फर्म के लिए मुनीम चाहिए, सोच समझ कर ही तो रक्खा जा सकता था, मनसा राम से उन की भेट हो गई। अपनें गुणों की व्याख्या करते हुए मनसा राम बोले—"सेठ जी। काम करने मे मुझे सुख मिलता है। चौवीस घण्टे काम कराये जाइये, काम लेने वाला चाहे थक जाए पर मैं नही थक सकता। बस थकान और आलस्य से ही मुझे वैर है। मुझे तो हर समय काम चाहिए। बात यह है जब मुझे काम नहीं मिलता तो उलटी सीधी बातों मे लगा देता हूँ अपने को। चाल इतनी तेज की आप अनुमान नहीं लगा सकते, क्षण भर में सारे बाजार का चक्कर काट आऊं और आप देखते ही रह जायें। समझदारी की क्या बात पूछते हैं अच्छे अच्छे लोग बन गए हैं मेरी सूझ बूझ से। जितने महापुरुषों के नाम आप सुनते हैं सब को अपने राम ने ही उठा दिया है इतना ऊंचा जितनी बड़ी २ फर्में आप बाजार में देखते हैं हमारी होती

और उन के पुराने साथी वचना राम तो जैसे फ़र्म के ही मालिक बन बैठे। न किसी का भय और न परवाह। अपना बड़प्पन दर्शाते ग्राहकों को डाटने फटकारने में। किसी पर बाणों का प्रहार करते तो किसी का अपमान कर डालते। सदा झूठ फरेब दे कर लोगों को ठगने और लाला जी से सहानुभूति रखने वालों को शत्रु बना लेने में वे अभ्यस्त हो गए। कभी कभी उन की कृपा से देही राम पर, दुकान पर भी, बन आती, करते वचना राम भरते देही राम। और मनसा राम तो सारे दिन नगर का चक्कर लगाते रहते। दुराचार की ओर उन की विशेष रुचि हुई दुकान का माल लगाने लगे अपनी तफरीह में। देही राम को भी हाकते और उन्हें अपने वैभव में साझीदार बना कर उन को भी क्षीण करते जाते। दुकान की हालत खराब हो गई। वचना राम, मनसा राम और देही राम सभी तो उच्छृङ्खल हो गए और दुकान का दिवाला निकलने की नौबत आ गई। साख गिर गई, चारों ओर से घाटा ही घाटा। पर आत्मा राम का तो जैसे पता ही नहीं।

एक बार भाग्यवश एक ज्ञानी से उन की भेंट हो गई। स्वभाव से तो थे ही तत्वज्ञान के भूखे, भेंट हुई तो फिर बातें भी होने लगीं। तत्वज्ञानी ने उन्हें बताया—"लाला जी रहते कहां हो। जो कुछ कमाई थी वह तो देही राम की श्रेष्ठ दुकान पाने में लगादी, जो नेक्षेम था वह आप के परम सेवक मनसा राम के इशारे पर वचना राम और देही राम ने चट कर डाला। देही राम को आप नहीं जानते, बड़ा धोखेबाज है वह, जब तक गांठ भारी है वह साथ देता है और जब वे आर उजड़ने लगता है, दिवाला खिसकने लगता है वह पल्ला झाड़ कर अलग हो जाता है। लेन देन करना पड़ता है व्यापारी को, जूते खाने पड़ेंगे आपको। और वह जो मनसा राम है उस

सर्वोत्तम कर्मचारी बन कर क़दम २ पर सहयोग करने लगे।

क्या आप सेठ आत्मा राम बनना चाहेंगे? आप सेठ आत्मा राम के कौन से व्यवहार को पसन्द करेंगे उस व्यवहार को पसन्द करते हैं। आप जो उन्होंने कर्मचारियों को उच्छृङ्खल होने की छूट देते हुए किया अथवा उसे जिस के द्वारा वे माला माल हुए हैं? मैं समझता हूं सेठ आत्मा राम का अन्तिम व्यवहार ही आप को पसन्द आएगा। और तब बहुत बड़ी समस्या हल हो जाती है।

जानते हैं आप सेठ आत्मा राम कौन है? क्या आप उनसे परिचित हैं? आप मौन हैं, मैं ही आप को बताता हूं आप उन से बहुत अच्छी तरह परिचित हैं, अता पता पूछते हैं? तो मैं आप से पूछूं गा क्या कोई ऐसा भी व्यक्ति है जो अपने आप से भी अपरिचित हो? आप ही तो हैं सेठ आत्मा राम आप जो यहा इतने सारे लोग बैठे हैं और यहा से बाहर दुनिया के इस छोर से उस छोर तक जो लोग बिखरे हुए हैं उन में से प्रत्येक सेठ आत्मा राम है। नाम के आगे पीछे के सेठ और राम उड़ा दीजिए, केवल आत्मा रहने दीजिए, जब आत्मा के आगे पीछे लगे हुए कर्म क्षय हो जाते हैं तभी तो पवित्र रूप सामने आता है उसका। अब समझ में आने वाली बात हो गई।

मन, वचन और देह यह तीन चीजें आप की आत्मा के के पास हैं आत्मा का व्यापार है, उस धन की अभिवृद्धि करना जो आत्मा को दुखों से मुक्त करने का रास्ता खोल दे आत्मा के पास पहले से कुछ धन मौजूद है पूर्व जन्म में कमाए पुण्य और पापकर्मों की एकमात्रा क्षय करने के उपरान्त ही आप को यह देही राम की दुकान मिली। देह को आत्मा नहीं कहते, देह में रहने वाला आत्मा है। मन और वचन यह दोनों आत्मा की सेवा के लिए हैं, आत्मा के पुण्य कार्य में सहयोग देने के लिए

है। अतः इन तीनों को आत्मा यदि अपने वश में रख कर स्वभावानुकूल कर्म कराने में प्रयुक्त करे तो आप का व्यापार बढ़ेगा अन्यथा आत्मा को हानि पहुँचेगी। इन तीनों का दुष्फल भोगना पड़ेगा आत्मा को। अतः आत्मा को सचेत रहना होगा। आप प्रतिदिन सुलझे व्यापारी की भांति रात्रि को अपने कर्मों की लिस्ट मिलाइये। आप ने क्या किया क्या करना चाहिए था पुरानी भूलें दूसरे दिन न दोहरावें इस का संकल्प करें।

मनसा राम ने सेठ आत्मा राम के रूप में जो अपना गुण गान किया है वास्तव में वही है मन का रूप। मन को सदा काम चाहिए आप उसे अच्छे शुभ और शुद्ध कर्मों में लगाए रक्खें तो वह इस ओर सफलता प्राप्त करता चला जायगा पर जब शुभ अथवा शुद्ध काम आप नहीं देंगे मन को तो वह अपने स्वामी आत्मा के स्वभाव के प्रतिकूल हानिकारक कर्मों में लग जायेगा। कुछ लोग कहते हैं मन को मारो मैं कहता हूँ महायोगी को मारो मत मारने से काम न चलेगा नुकसान ही होगा मन को मारने की अपेक्षा उसे गतिमान रक्खो उसे काम दो उसे अच्छाई की ओर लगाओ। आत्मा के वश में रक्खा अनुशासित मन आपके लिए बहुत ही उपयोगी सिद्ध होगा।

वचन अर्थात् वाणी को प्रयोग करना यह एक बड़ी देन है जिसे यह प्राप्त नहीं वह मूक होता है गूंगा होता है वह अपने को व्यक्त नहीं कर पाता यह स्थिति कुछ अच्छी तो नहीं होती। आप वाणी का प्रयोग कीजिए पर प्रेम वृद्धि के लिए वाणी को स्तुति में लगाइये गुणियों का गुण गान करने में प्रभु आराधना में प्रयोग कीजिए सत्य आत्म बोधन में धार्मिक कर्मों में मन का उपयोग हो। वाणी की मर्यादा होनी चाहिए मर्यादित वाणी प्रेम स्नेह और सम्मान के द्वार खोल देती है। आप की वाणी से समस्त आत्माओं के प्रति समभाव, दया भाव और प्रेम

की पुण्य सलिला बहे, यह आप की वाणी का सदुपयोग।

आप की देह का उपयोग क्या है? कर्म करो, पुरुषार्थ करो, दीन दुखियों की सहायता करो, जिन हाथों से कमाओ उन्हीं से खुल कर दान भी करो ऐसे कर्म करो कि लोग अनुकरण करने के लिए तुम्हारी ओर देखे। दुराचार, भ्रष्टाचार, अनाचार, हिंसा, शोषण आदि दुष्कर्म देह द्वारा न करो यह होगी देह का मर्यादा।

मन, वचन और कर्म का परस्पर सहयोग आत्मोन्नति के लिए बहुत आवश्यक है। इन तीनों का परस्पर असहयोग व्यक्ति को ले डूबता है। मन वही सोचे जो आत्मा के भले का हो, जिव्हा वही बोले जो मन की बात हो और देह वही करे जो वाणी से कहा गया हो। जिस के मन वचन और कर्म मे अन्तर होता है वह कभी सफल नहीं होता, न सांसारिक कार्यों मे उसे सफलता मिलती है और न पारलौकिक धर्म पालन मे।

आत्मा के स्वामित्व की बात याद रखिये और मन वचन और देह को उस के आधीन रखिये, ये कर्मचारी हैं, उन का प्रत्येक कार्य स्वामी के भले के लिए हो तो, स्वामी मालामाल हो जायेगा। स्वामी को दारिद्रय और दुःखो से मुक्ति मिल जायेगी। यही आज मैं समझाना चाहता था।

पटियाला चातुर्मास २२—८—५४